मासिक समाचारपत्र ● पूर्णांक 109 ● वर्ष 12, अंक 4 ● जून 2022 ● दस रुपये ● 16 पृष्ठ

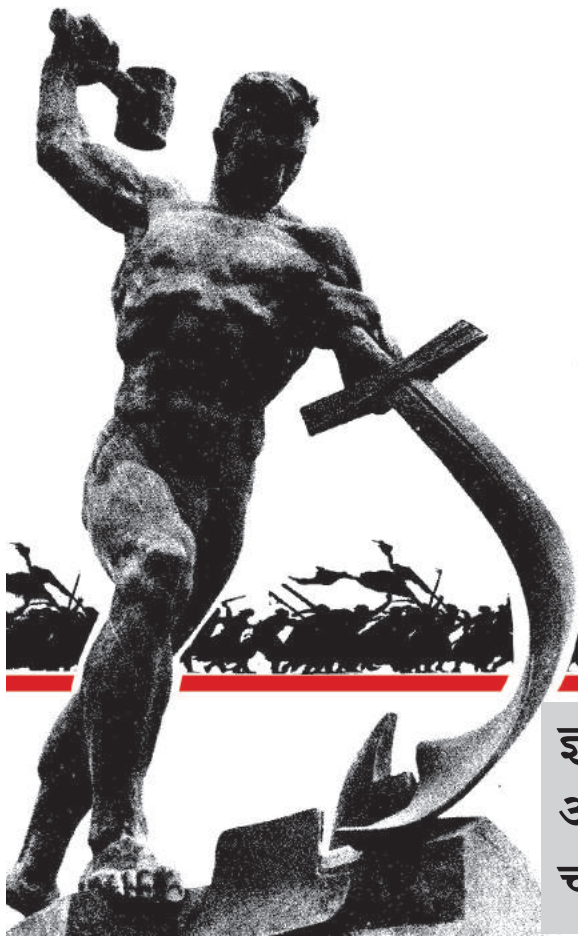

मज़दूर बिगुल

ज्ञानव्यापी विवाद और फ़ासिस्टों की चालें 7

क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षण माला-1 8-9
मज़दूरी के बारे में

श्रीलंका का संकट : नवउदारवादी नीतियों की ख़ूनी जकड़ का विनाशकारी परिणाम 13

बढ़ती महँगाई का असली कारण

गहराते पूँजीवादी आर्थिक संकट के दौर में समूचे पूँजीपति वर्ग द्वारा आपदा को अवसर में बदलकर जारी लूट और मुनाफ़ाख़ोरी

सम्पादक मण्डल

अपनी सरकार के आठ साल बीतते-बीतते आखिरकार नरेन्द्र मोदी ने देश की जनता को "अच्छे दिन" दिखला ही दिये! थोक महँगाई दर मई 2022 में 15.08 प्रतिशत पहुँच चुकी थी और खुदरा महँगाई दर इसी दौर में 7.8 प्रतिशत पहुँच चुकी थी। थोक कीमतों का सूचकांक उत्पादन के स्थान पर थोक में होने वाली ख़रीद की दरों से तय होता है, जबकि खुदरा कीमतों का सूचकांक महँगाई की अपेक्षाकृत वास्तविक तस्वीर पेश करता है, यानी वे कीमतें जिन पर हम आम तौर पर बाज़ार में अपने ज़रूरत के सामान ख़रीदते हैं। बढ़ते थोक व खुदरा कीमत सूचकांक का नतीजा यह है कि मई 2021 से मई 2022 के बीच ही आटा की कीमत में 13 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। दूध रु. 50/लीटर व वनस्पति तेल औसतन रु. 200/लीटर का आँकड़ा पार कर रहे हैं। घरेलू रसोई गैस की कीमतों में 76 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी की गयी है और वह करीब रु. 1010 प्रति सिलेण्डर की दर पर बिक रहा है। कॉमर्शियल रसोई गैस की कीमतों में 126 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी की गयी है जो कि अब लगभग रु. 2400 पर बिक रहा है। मोदी सरकार ने हाल ही में विधानसभा चुनावों की समाप्ति के बाद पेट्रोल और डीज़ल की कीमतों में भारी बढ़ोत्तरी करते हुए दोनों के ही शतक लगवा दिये थे। लेकिन इसके बाद गुजरात व कुछ अन्य राज्यों में चुनावों के मद्देनज़र और पूँजीपति वर्ग के विचारणीय हिस्से को इसका नुकसान होने के कारण उसे करीब 10 रुपये तक घटा दिया। लेकिन फिर भी अभी पेट्रोलियम उत्पादों पर भारी करों का बोझ है और वह सरकार द्वारा जनता की लूट का एक प्रमुख ज़रिया है। अगर हम 2017 से तुलना करें, तो चावल की कीमत में 24 प्रतिशत, गेहूँ की कीमत में 24 प्रतिशत, आटे की कीमत में 28 प्रतिशत, तूर/अरहर की कीमत में 21 प्रतिशत, मूँग की कीमत में 29 प्रतिशत और मसूर की कीमत में 32 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है। इसी प्रकार खाद्य तेलों में मूँगफली के तेल में 41 प्रतिशत, सरसो तेल में 71 प्रतिशत, वनस्पति तेल में 112 प्रतिशत, सोयाबीन तेल में 101 प्रतिशत, सूरजमुखी तेल में 107 प्रतिशत और पाम तेल में 128 प्रतिशत की कीमत बढ़ोत्तरी हुई है। सब्ज़ियों में इन्हीं पाँच वर्षों में आलू में 65 प्रतिशत, प्याज़ में 69 प्रतिशत, टमाटर में 155 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है, जबकि इन्हीं पाँच वर्षों में दूध की कीमत में 25 प्रतिशत, खुली चाय की कीमत में 41 प्रतिशत और नमक की कीमत में 28 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई है।

दूसरी तरफ, आम मेहनतकश आबादी की आय में या तो गिरावट आयी है या फिर वह लगभग स्थिर है। अभी हालत यह है कि एक ताज़ा रिपोर्ट के अनुसार अगर आप रु. 25,000 कमाते हैं तो आप भारत के ऊपरी 10 प्रतिशत आबादी में आते हैं! उजरती श्रमिकों का 57 प्रतिशत भारत में रु. 10,000 से कम कमाता है और समस्त उजरती श्रमिकों की

(पेज 10 पर जारी)

मज़दूर बिगुल के सभी पाठकों और शुभचिन्तकों से...

दोस्तो, काग़ज़ और छपाई की लगातार बढ़ती क़ीमतों के कारण इस अंक से हमें 'मज़दूर बिगुल' की एक प्रति की क़ीमत 10 रुपये करनी पड़ रही है। एक वर्ष की सदस्यता राशि 125 रुपये (साधारण डाक व्यय सहित) होगी। डाक विभाग की गड़बड़ियों से बचने के लिए रजिस्टर्ड डाक से अंक मँगवाने वालों के लिए एक वर्ष की सदस्यता राशि 325 रुपये होगी। आजीवन सदस्यता राशि 3000 रुपये होगी।

'मज़दूर बिगुल' के सभी पाठकों, सहयोगियों और शुभचिन्तकों से हमारी अपील है कि अगर आप इस अख़बार को ज़रूरी समझते हैं और जनता का अपना मीडिया खड़ा करने के जारी प्रयासों की इसे एक ज़रूरी कड़ी मानते हैं, तो अपना सहयोग पहले की तरह जारी रखें।

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

आपस की बात

'किसान मज़दूर एकता' के खोखले नारे की असलियत

पंजाब, हरियाणा और पूर्वी राजस्थान के कुछ हिस्सों में पिछले 2-3 महीनों से ग्रामीण व खेतिहर मज़दूर अपनी मज़दूरी बढ़ाने के लिए धरने प्रदर्शन कर रहे हैं जिससे यहाँ के धनी किसान, कुलकों की नींद उड़ी हुई है। हरियाणा, राजस्थान के गाँवों में तो धनी किसानों, कुलकों के षड्यंत्रों और चालों के चलते ये आन्दोलन दबाये जा चुके हैं या समझौते हो चुके हैं। लेकिन पंजाब में अभी कुछ लाल झण्डा संगठनों और नीले झण्डे की अगुवाई में मानसा, सरदुलगढ़ जैसे ज़िलों में ये आन्दोलन अभी भी चल रहे हैं और सरकार और धनी किसानों दोनों को मज़दूरी बढ़ाने के लिए मजबूर करने की कोशिश जारी है। अब बात करते हैं तथाकथित 'किसान मज़दूर एकता' के एक खोखले और प्रसिद्ध नारे की जिसे पिछले साल हुए धनी किसान कुलक आन्दोलन में बड़े ही जोर शोर से भुनाया गया था और बहुत से मज़दूर भी उस नारे से भावुक होकर धनी किसान कुलक आन्दोलन में कूद पड़े थे। इसमें कुसूर मज़दूरों का नहीं था बल्कि उन धनी किसान का था जिन्होंने अपनी निजी स्वार्थ के लिए मज़दूरों को भावनाओ का दुरुपयोग किया था। लेकिन अब जब मज़दूर अपनी मज़दूरी बढ़ाने के लिए सड़कों पर है तो कोई भी किसान संगठन या उनका कोई भी छोटा बड़ा नेता इनके समर्थन में नहीं आया है। जबकि इनके किसान आन्दोलन में मज़दूर शामिल भी हुए थे, शहीद भी हुए थे और पुलिस की प्रताड़ना भी सही थी और आज जब मज़दूर को इनके सहयोग की ज़रूरत है तो सहयोग करना तो दूर बल्कि धनी किसानों द्वारा आन्दोलन कर रहे मज़दूरों का गाँव में सामाजिक बहिष्कार तक करने की बातें हो रही है। जो मज़दूर धनी किसानों के घर से लस्सी माँगने जाते हैं उनसे लस्सी के पैसे माँगे जाते हैं। और जब इनका किसान आन्दोलन चल रहा था तो गाँवों से दूध के केंटर भर-भरकर कुण्डली, सिंघु बॉर्डर पर पहुँचाये जाते थे।

वैसे तो पहले से ही स्पष्ट था कि इन धनी किसानों के मन में मज़दूरों के लिए रत्तीभर भी सहानुभूति नहीं है और अब तो ये बात एकदम स्पष्ट हो चुकी है क्योंकि मज़दूरी बढ़ाने की इनकी माँग को किसी भी किसान नेता ने समर्थन नहीं दिया है। मज़दूर आबादी किसान आन्दोलन के समय भी मजबूर थी और आज भी मजबूर है क्योंकि अगर उस समय किसान आन्दोलन के समर्थन में मज़दूर नहीं जाते तो भी धनी किसानों द्वारा सामाजिक बहिष्कार झेलना पड़ता और अगर आज अपनी मज़दूरी बढ़ाने के लिए आन्दोलन करता है तो भी सामाजिक बहिष्कार की धमकियाँ मिलती हैं।

मज़दूरों को अब समझ जाना चाहिए कि इन धनी किसानों व पूँजीवादी भूस्वामियों का पिछलग्गू बनने का कोई फ़ायदा नहीं है बल्कि इनके ख़िलाफ एकजुट होकर ही समस्या का समाधान है। और जो लोग मज़दूरों को छोटे मालिक और बड़े मालिक वाली परिभाषा से झाँसा देने का प्रयास कर रहे हैं तो मज़दूर ये समझें कि सांप चाहे छोटा हो या बड़ा ज़हर बराबर ही होता है। ये धनी किसान, कुलक कभी भी मज़दूरों के साथ ना तो खड़े हुए थे, ना अब खड़े हैं और ना ही आगे कभी खड़े होंगे। मज़दूरों को इनसे सावधान रहने की ज़रूरत है और साथ में इन धनी किसानों, कुलकों की निजी सम्पत्ति की रक्षा कर रहे तथाकथित वामपंथी संगठनों और उनके नेताओं से भी सावधान रहने की जरूरत है जो किसान आन्दोलन में तो गिद्दा, भंगड़ा, भरतनाट्यम पता नहीं क्या क्या कर रहे थे लेकिन अब जब सच में मज़दूरों का साथ देने का समय है तो शतुरमुर्ग की तरह रेत में गर्दन दबाए बैठे हैं। बाकी मौजूद घटनाक्रम पर मज़दूर बिगुल अखबार द्वारा ग्रामीण मज़दूरों और धनी किसानों पर जो विश्लेषण दिया गया था वो ज़्यादा सच्चाई के करीब था।

– कालू राम, सिरसा

वज़ीरपुर औद्योगिक क्षेत्र में काम के बुरे हालात

मैं वज़ीरपुर औद्योगिक क्षेत्र में गरम रोला के कारख़ाने में काम करता हूँ। काम के हालात पहले से बुरे हो चुके हैं। एक तरफ मालिक मज़दूरों को काम से निकलता है और दूसरी तरफ कम मज़दूरों से ज़्यादा काम करवाता है। हमें साफ दिखता है कि मालिक हमें लूट कर अपनी तिज़ोरी भर रहा है और हम धीरे-धीरे अन्दर से सिकुड़ते जा रहे हैं। पहले जब मैं काम करने आया था तो शरीर हष्ट-पुष्ट था, अब स्टील लाइन में काम करते हुए कई तरह की बीमारियाँ हो गई हैं। डॉक्टर ने स्टील लाइन में काम करने से मना किया है पर अब नया काम मिलना भी मुश्किल है। ऊपर से ठेकेदारी प्रथा लगातार बढ़ती जा रही है। ज़्यादातर फ़ैक्ट्री में अब मालिक ठेके पर ही काम करवाते हैं ताकि उन्हें कोई नियम क़ानून लागू न करना पड़े। सुबह उठो, काम पर जाओ, 12 घण्टे खटो फिर घर आकर खाना बनाओ और सो जाओ, यही ज़िन्दगी बन गयी है। मालिक की लूट को सभी सरकारें भी समर्थन करती हैं। कई बार लगता है कि इससे निकलने का कोई रास्ता नहीं है।

पर 'मज़दूर बिगुल' अख़बार को पढ़ कर लगता है कि यह सब बदला जा सकता है, मालिकों की यह लूट हमेशा जारी नहीं रह सकती। मज़दूर आन्दोलन के इतिहास को जानने वर्तमान को समझने के लिए और अपनी मुक्ति का रास्ता जानने के लिए मैं नियमित मज़दूर बिगुल पढ़ता हूँ और अन्य मज़दूरों को भी इसके बारे में बताता हूँ।

– विष्णु, वज़ीरपुर, दिल्ली

क्या आप मज़दूर बिगुल के रिपोर्टर बनेंगे?

क्या आप चाहते हैं कि मज़दूरों के जीवन, उनके काम के हालात, उनकी समस्याओं और संघर्षों के बारे में आप जैसे देश के करोड़ों मज़दूरों-कर्मचारियों को और देश के आम नागरिकों को पता चले? क्या आप चाहते हैं कि मज़दूरों की ख़बरें जो हर मीडिया से ग़ायब रहती हैं, वे मज़दूरों के अपने अख़बार के ज़रिए लोगों तक पहुँचें?

तो क़लम उठाइए और अपने कारख़ाने, दफ़्तर या बस्ती की रिपोर्टें, लेख, पत्र या सुझाव हमें भेजिए।

आप इन तरीक़ों से अपनी बात हमारे तक पहुँचा सकते हैं :

डाक से भेजने का पता : **मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020**

ईमेल से भेजने का पता : **bigulakhbar@gmail.com**

व्हाट्सऐप नम्बर : 9721481546

"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" **– लेनिन**

'मज़दूर बिगुल' मज़दूरों का अपना अख़बार है।

यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता।

बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/जुटाइए।

सहयोग कूपन मँगाने के लिए मज़दूर बिगुल कार्यालय को लिखिए।

मज़दूर बिगुल की वेबसाइट
www.mazdoorbigul.net

इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक क्रमवार, उससे पहले के कुछ अंकों की सामग्री तथा राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकाएँ उपलब्ध हैं। बिगुल के प्रवेशांक से लेकर नवम्बर 2007 तक के सभी अंक भी वेबसाइट पर क्रमशः उपलब्ध कराये जा रहे हैं।

मज़दूर बिगुल का हर नया अंक प्रकाशित होते ही वेबसाइट पर निःशुल्क पढ़ा जा सकता है।

आप इस फ़ेसबुक पेज के ज़रिये भी 'मज़दूर बिगुल' से जुड़ सकते हैं :
www.facebook.com/MazdoorBigul

'मज़दूर बिगुल' का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

1. 'मज़दूर बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'मज़दूर बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'मज़दूर बिगुल' स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भर्ती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'मज़दूर बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

प्रिय पाठको,

बहुत-से सदस्यों को 'मज़दूर बिगुल' नियमित भेजा जा रहा है, लेकिन काफ़ी समय से हमें उनकी ओर से न कोई जवाब मिला और न ही बकाया राशि। आपको बताने की ज़रूरत नहीं कि मज़दूरों का यह अख़बार लगातार आर्थिक समस्या के बीच ही निकालना होता है और इसे जारी रखने के लिए हमें आपके सहयोग की ज़रूरत है। अगर आपको 'मज़दूर बिगुल' का प्रकाशन ज़रूरी लगता है और आप इसके अंक पाते रहना चाहते हैं तो हमारा अनुरोध है कि आप कृपया जल्द से जल्द अपनी सदस्यता राशि भेज दें। आप हमें मनीऑर्डर भेज सकते हैं या सीधे बैंक खाते में जमा करा सकते हैं।

मनीऑर्डर के लिए पता :
मज़दूर बिगुल, द्वारा जनचेतना
डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020
बैंक खाते का विवरण : Mazdoor Bigu।
खाता संख्या : 0762002109003787, IFSC: PUNB0185400
पंजाब नेशनल बैंक, अलीगंज शाखा, लखनऊ

सदस्यता : वार्षिक : 125 रुपये (डाकख़र्च सहित); आजीवन : 3000 रुपये

मज़दूर बिगुल के बारे में किसी भी सूचना के लिए आप हमसे इन माध्यमों से सम्पर्क कर सकते हैं :
फ़ोन : 0522-4108495, 9721481546
ईमेल : bigulakhbar@gmail.com
फ़ेसबुक : www.facebook.com/MazdoorBigul

मज़दूर बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय	: 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 फ़ोन: 9721481546
दिल्ली सम्पर्क	: बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर, दिल्ली-90, फ़ोन: 8860792320
ईमेल	: bigulakhbar@gmail.com
मूल्य	: एक प्रति – 10/- रुपये वार्षिक – 125/- रुपये (डाक ख़र्च सहित) आजीवन सदस्यता – 3000/- रुपये

उत्तर प्रदेश में निर्माण मज़दूरों की स्थिति है भयावह, संघर्ष का रास्ता चुनना ही होगा

नोएडा की स्थापना के बाद से ही यहाँ पर तेज़ी से निर्माण कार्य हो रहे हैं। उत्तर प्रदेश के अलग-अलग जिलों, बिहार, झारखंड और छत्तीसगढ़ से आने वाले मज़दूरों ने नोएडा में बड़े-बड़े भवन, आवासीय परिसर, शॉपिंग मॉल, औद्योगिक इकाइयाँ, स्कूल, हॉस्पिटलों, कारपोरेट ऑफिसों और प्राइवेट स्कूल-कॉलेजों का निर्माण किया है। उत्तर प्रदेश के इस सर्वाधिक विकसित जिला रोज़गार सहित कई आर्थिक कारणों से देशभर के लोगों को आकर्षित करता है। लेकिन नोएडा की चकाचौंध को जिन मज़दूरों ने अपने मेहनत से क़ायम किया है, वह स्वयं नारकीय जीवन जीने को मजबूर हैं।

जिस तरह से मोदी और योगी सरकार ने पूँजीपतियों को मज़दूरों को लूटने की खुली छूट दे रखी है, मज़दूर आबादी दो तरीक़े से पूँजीपतियों के द्वारा प्रताड़ित हो रही है। पहला, मज़दूरों के हितों की नुमाइंदगी में बनाये गये श्रम क़ानूनों को ख़त्म करके और दूसरा पेट्रोलियम पदार्थों के दाम बढ़ाकर। पेट्रोलियम पदार्थों के मूल्य बढ़ने के कारण चौतरफ़ा महँगाई बढ़ रही है, जिससे मज़दूरों को अपने परिवार के पोषण पर पहले से ज़्यादा खर्च करना पड़ता है।

2019 में जारी आर्थिक सर्वेक्षण की रिपोर्ट के अनुसार भारत में असंगठित क्षेत्र में कुल मज़दूरों का 93 प्रतिशत कार्यरत है। देश में असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों की संख्या 45 करोड़ से अधिक है। इतनी बड़ी आबादी को केन्द्र और राज्य सरकारों ने उनके हाल पर छोड़ रखा है।

मौजूदा हालात में मेहनतकश आबादी को चौतरफ़ा परेशानी झेलनी पड़ रही है। हम इस लेख में नोएडा में निर्माण क्षेत्र में काम कर रहे मज़दूरों के बारे में चर्चा करेंगे और जानेंगे कि उत्तर प्रदेश की आर्थिक राजधानी नोएडा को अपनी मेहनत से विकसित करने वाले निर्माण मज़दूरों की ज़िंदगी के हालात कैसे हैं? और इस विकास में उनके महत्वपूर्ण योगदान के बदले उन्हें क्या हासिल हुआ है।

नोएडा का विकास कई चरणों में हुआ है, जब-ब सेक्टरों की स्थापना के लिए निर्माण कार्यों की ज़रूरत पड़ी। बड़े पैमाने पर दूसरे राज्यों से मज़दूरों को लाया गया और उनकी झुग्गियाँ बसायी गईं। जब निर्माण कार्यों की आवश्यकता ख़त्म हो जाती तो इन बस्तियों को अतिक्रमण बताकर उजाड़ दिया गया। इस तरह सड़कों और आवासी परिसरों के किनारे बसे इन झुग्गियों में से किसी की उम्र 6 महीने रही तो किसी एक से दो वर्ष। वर्तमान समय में भी नोएडा के उन्हीं इलाक़ों में निर्माण मज़दूरों की अस्थायी झुग्गियाँ हैं जहाँ निर्माण कार्य जारी हैं।

निर्माण मज़दूरों की मुख्यत: दो तरह की आबादी है, पहले वे लोग जो प्रतिदिन काम की तलाश में लेबर चौक पर जाते हैं। दूसरे, किसी बड़े भवन के निर्माण के लिए काम कर रहे होते हैं। दूसरी तरह के ज्यादातर मज़दूर ठेकेदारों के माध्यम से दूसरे राज्यों से मंगाये जाते हैं और यह कार्य पूरा होने तक भवन के आसपास या उसके परिसर में ही अस्थाई टीन शेड से बने झुग्गियों में रहते हैं। इनकी मज़दूरी भी दिहाड़ी मज़दूरों की तुलना में कम होती है।

वर्तमान समय में दिहाड़ी मज़दूरों को एक दिन के लिए 350 से 400 रुपये तक मिलते हैं, विशेष परिस्थितियों में इन्हें 450-500 रुपये भी मिल जाते हैं। राजगीर मिस्त्री को प्रतिदिन 500 से 600 रुपये मिलते हैं और विशेष परिस्थितियों में यह रुपये मिल जाता है। जबकि लंबे समय तक एक प्रोजेक्ट पर काम करने वाले मज़दूरों को प्रतिदिन 320-360 रुपये ही मिलते हैं। वहीं, राजगीर मिस्त्री को 500-550 रुपये मिलते हैं।

नोएडा में खोड़ा, नंगला, भंगेल और बरोला में मुख्य तौर पर लेबर चौक लगते हैं, इसके अलावा कई छोटे-छोटे चौराहों पर भी लेबर चौक लगते हैं। लेबर चौक पर आने वाले मज़दूरों को मुश्किल से 15-20 दिनों तक काम मिल रहा है। 40 वर्ष से अधिक उम्र के मज़दूरों को अधिकतम 15 दिन ही काम मिल पाता है। लेकिन काम की तलाश में इन्हें प्रतिदिन लेबर चौक आना पड़ता है। काम नहीं मिलने की दशा में आने जाने के किराये का भी नुक़सान होता है।

दिहाड़ी मज़दूर महीने में अधिकतम 8-10 हज़ार रुपये कमा पाते हैं। ज़्यादातर मज़दूर प्रवासी होते हैं और इस कमाई पर ही पूरा परिवार निर्भर रहता है। मज़दूरों को अपनी कमाई का बड़ा हिस्सा परिवार के खर्च के लिए भेजना पड़ता है। पैसे बचाने के लिए छोटे-छोटे कमरों में 3-4 मज़दूर रहते हैं, खाने पर कम से कम खर्च करते हैं और बेहद ज़रूरी होने पर ही इलाज करवाते हैं। लगातार बढ़ती महँगाई के कारण दिहाड़ी मज़दूरों के लिए बचत कर पाना लगातार मुश्किल होता जा रहा है।

प्रवासी निर्माण मज़दूरों के जीवन का नारकीय परिस्थितियाँ

लेबर चौक पर काम की तलाश में आने वाले मज़दूर अधिकांश झुग्गियों में किराये के कमरे में रहते हैं। लम्बे प्रोजेक्ट पर काम करने वाले मज़दूर बेहद तंग कमरों में पूरे परिवार के साथ गुज़ारा करते हैं। नोएडा के सेक्टर 136 में बड़े पैमाने पर कारेपोरेट ऑफिसों के लिए निर्माण कार्य हो रहे हैं। बिगुल मज़दूर दस्ता की टीम ने ऐसे ही कुछ कमरों का निरीक्षण किया।

कार्यस्थल के परिसर में या ग्राउंड फ़्लोर पर मज़दूरों को रहने के लिए कुछ टीन शेड बना दिया जाते हैं। कमरे की

चौड़ाई 6 फ़ीट, लंबाई 8 और ऊंचाई 5 फ़ीट थी। एक कमरे में पति-पत्नी और बच्चों सहित परिवार के 4-5 सदस्य रह रहे थे। कमरे में औसत क़द का व्यक्ति भी खड़ा नहीं हो सकता है। रात में परिवार के अधिकांश सदस्यों को बाहर सोना पड़ता है और खाना भी मज़दूर कमरे के बाहर ईंटों को जोड़ कर बनाते हैं। मई-जून की तपती धूप में टीन शेड के अंदर आग की तरह तपिश होती है, रात में भी मज़दूर बाहर ही सोना पसंद करते हैं। टीन शेड के बने कमरे केवल सामान रखने के काम में आते हैं।

ठेकेदार मज़दूरों के लिए पीने के पानी, शौचालय और नहाने का भी कोई व्यवस्थित इंतज़ाम नहीं करते हैं। महिलाओं को सड़क के किनारे ही खुले में नहाना पड़ता है, बच्चों के लिए किसी आंगनवाड़ी या स्कूल की कोई व्यवस्था नहीं की जाती। छोटे बच्चे जहाँ माँ काम करती हैं उसके आसपास ही ईंट -पत्थरों से खेलते रहते हैं।

कई बार ठेकेदार मज़दूरों से महीने-दो महीने काम कराने के बाद उन्हें बिना पैसे दिये ही डरा-धमका कर भगा देते हैं। मज़दूरों के पास इस बाद का कोई सबूत नहीं होता कि उनके कितने पैसे किसने हड़पे हैं। पुलिस और श्रम विभाग के तिकड़म में वह फँसना नहीं चाहते क्योंकि यहाँ भी हर कदम पर पैसे ही लगते हैं।

निर्माण मज़दूरों के लिए श्रम क़ानून होते भी हैं?

भारत में अधिकांश श्रम क़ानून संगठित क्षेत्र के मज़दूरों पर लागू होते हैं। असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले मज़दूरों के लिए जो श्रम क़ानून हैं भी उन्हें लागू करने के प्रति केन्द्र व राज्य सरकारें उदासीन हैं। दिखावे के लिए सरकारों ने कुछ योजनाएँ बना रखी हैं लेकिन उन्हें काग़ज़ों से बाहर कम ही निकाला जाता है। यह तब होता है जब सरकार को अपनी उपलब्धियाँ गिनानी होती हैं।

असंगठित क्षेत्र में कार्यरत मज़दूरों के लिए रोज़गार की सुरक्षा, कार्यस्थल पर सुरक्षा उपकरणों के इंतज़ाम, वेतन का नियमित भुगतान, सशुल्क छुट्टियाँ, साप्ताहिक अवकाश, आवश्यक भत्ते, न्यूनतम मज़दूरी, पेंशन आदि के मुद्दों पर सरकार गंभीर नहीं है। सरकार इन्हें लागू करने की दिशा में गंभीर प्रयास तक नहीं करती है।

कोई स्पष्ट नियम नहीं होने के कारण असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों का वेतन अनिश्चित होता है। काम के अभाव के कारण इनके मोलभाव की क्षमता भी बेहद सीमित होती है। सुविधाएँ देना तो दूर की बात है सरकार और प्रशासन यह जानने का प्रयास भी नहीं करते हैं कि ज़िले या राज्य में निर्माण मज़दूर, पेंटर, राजगीर, दिहाड़ी मज़दूर, बढ़ई कितने हैं?

अशिक्षा और कम राजनीतिक समझ के कारण दिहाडी मज़दूर इस बात से भी अंजान हैं कि सरकार की ज़िम्मेदारी बनती है कि उन्हें सुरक्षित रोज़गार मिले और श्रम क़ानूनों के अनुसार वेतन प्राप्त हो। नोएडा के नंगला लेबर चौक पर हमने कई मज़दूरों से बात की किसी के पास भी ई-श्रम कार्ड तक नहीं मिला। ज़्यादातर मज़दूरों ने हमें बताया कि अभी तक किसी भी सरकार योजना का लाभ नहीं मिला है।

उत्तर प्रदेश सरकार की काग़ज़ में दफ़्न योजनाएँ

उत्तर प्रदेश सरकार निर्माण और असंगठित क्षेत्र के मज़दूरों के लिए कई योजनाएँ लागू करने का दावा करती है। महज़ औपचारिकता पूरी करने के लिए तैयार किए गये यह योजनाएँ काग़ज़ों में ही दफ़्न हो रही हैं। आम मज़दूर इन योजनाओं के बारे में जानते ही नहीं हैं। शासन या प्रशासन सरकार की योजनाओं और विकास के दावों का तो प्रचार करते हैं। "मज़दूर हितैषी" इन योजनाओं का कोई प्रचार-प्रसार नहीं किया जाता है। इसलिए इनके लाभुकों की संख्या नाममात्र की होती है।

कोरोना काल में सरकार ने उत्तर प्रदेश में रहने वाले 15 लाख दिहाड़ी मज़दूरों और निर्माण क्षेत्र (रिक्शा वाले, खोमचे वाले, रेवड़ी वाले, फेरी वाले, निर्माण कार्य करने वाले) 20.37 लाख मज़दूरों को 1,000 रुपये उनकी रोज़मर्रा की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए देने का वादा किया था। इसे सरकार की उपलब्धि के तौर पर तो प्रचारित कर दिया गया। जबकि वास्तविक पात्रों के बेहद छोटे हिस्से को योजना का लाभ मिला।

उत्तर प्रदेश भवन एवं सन्निर्माण कर्मकार कल्याण बोर्ड की वेबसाइट के अनुसार सरकार ने भवन एवं निर्माण कार्य में लगे मज़दूरों के लिए 28 योजनाओं को लागू किया है। प्रमुख योजनाओं में दुर्घटना सहायता योजना, गंभीर बीमारी सहायता योजना, अक्षमता पेंशन योजना, औज़ार क्रय सहायता योजना, कौशल विकास तकनीकी उन्नयन एवं प्रमाणन योजना, आवास सहायता योजना, निर्माण कामगार मृत्यु एवं विकलांगता सहायता योजना, महात्मा गांधी पेंशन योजना, आवास सहायता योजना (मरम्मत हेतु), आवासीय विद्यालय योजना आदि हैं।

योजनाओं के प्रति उत्तर प्रदेश सरकार की गंभीरता इसी से स्पष्ट होती है कि विभाग की वेबसाइट पर विकल्प होने के बावजूद भी लाभार्थियों की संख्या के बारे कोई जानकारी नहीं दी गई है। नगला, भंगेल लेबर चौक सहित कई मज़दूरों से बात करने पर भी हमें इन योजनाओं के लाभार्थी नहीं मिले। दरअसल, मज़दूरों को इन योजनाओं के बारे में कोई जानकारी ही नहीं है।

बढ़ रही है दिहाड़ी मज़दूरों की आत्महत्या की दर

दो वर्ष पहले केन्द्रीय गृह मंत्रालय ने 2019 में हुई आत्महत्याओं के आँकड़े जारी करते हुए बताया था कि दिहाड़ी मज़दूरों के आत्महत्या के दर में तेज़ी से बढ़ोत्तरी हो रही है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) के आँकड़े के अनुसार 2019 में भारत में दर्ज 1,39,123 आत्महत्याओं में दैनिक वेतन भोगियों की संख्या 23.4 प्रतिशत थी।

एनसीआरबी की रिपोर्ट में आत्महत्या के आँकड़ों को पेशे के अनुसार 9 वर्गों में विभाजित किया गया था। आत्महत्या करने वाले 97,613 पुरुषों में 29,092 दैनिक वेतनभोगी थे। वहीं, 3,467 वेतनभोगी महिलाओं ने भी 2019 में आत्महत्या की थी। ताज़ा आँकड़े अभी जारी नहीं किये गये हैं लेकिन हालात बता रहे हैं कि मज़दूरों के आत्महत्या में गिरावट आने की उम्मीद बेहद कम है।

कार्यस्थल पर भी आये दिन दुर्घटनाओं का शिकार होकर मज़दूरों की मौत होती रहती है। अधिक दबाव पड़ने पर तत्काल में ठेकेदार मुआवज़े के नाम पर परिजनों को दे देते हैं। यह भी बेहद कम मामलों में देखने को मिलता है। अधिकांश घटनाओं के बाद परिजनों को मज़दूरों के केवल शव ही मिल पाता है।

निर्माण मज़दूरों की दुर्दशा का एक बड़ा कारण मज़दूरों में एकता का अभाव है। किसी क्रांतिकारी नेतृत्व की ग़ैरमौजूदगी में मज़दूर अपनी माँगों को लेकर फिलहाल संघर्ष करने की स्थिति में ही नहीं हैं। आवश्यकता है कि एक क्रांतिकारी यूनियन के बैनर तले मज़दूर ख़ुद को एकजुट करें और स्थानीय स्तर पर मज़दूरों की यूनियन बनायी जाए। बिना संघर्ष के निर्माण मज़दूर अपने हालात को नहीं बदल सकते हैं। संघर्षों के लिए एकजुटता ही एकमात्र उपाय है।

– बिगुल संवाददाता

मुण्डका (दिल्ली) की फैक्ट्री में लगी आग

कौन है इन 31 मौतों का ज़िम्मेदार?

– भारत

बीते दिनों मुण्डका औद्योगिक क्षेत्र में जो हुआ वह महज़ हादसा नहीं है। इससे पहले भी दिल्ली और देश के अलग-अलग फैक्ट्री इलाकों में मज़दूरों की मौत की घटनाएँ सामने आती रहीं हैं और इसके बाद भी थ जारी है। मुण्डका में जिस फैक्टरी में आगजनी की यह भयानक घटना हुई उसमें चार्जर और राउटर बनाने का काम होता था। इस काम के लिए ज्यादा संख्या में महिला मज़दूरों को रखा गया था। आधिकारिक तौर पर 31 मज़दूरों की मौत हुई है, पर कई मज़दूर अभी तक लापता हैं। जाहिरा तौर पर मृत मज़दूरों की संख्या कहीं अधिक है। घटना की वीभत्सता और निर्ममता का अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि मृत मज़दूरों की पहचान बिना डीएनए टेस्ट के सम्भव नहीं है।

दिल्ली के अधिकांश कारखानों-फैक्टरियों में कोई श्रम कानून लागू नहीं होता। बेहद खतरनाक और वीभत्स परिस्थितियों में मज़दूरों को 16-16 घंटे खटवाया जाता है। मुण्डका की इस फैक्टरी में हुई यह घटना इस बात को चीख-चीख कर पुष्ट कर रही है। बिना खिड़की, दरवाज़ों के बनी हुई ऊँची-ऊँची चारदीवारियों में रोशनी और हवा का पहुँचना दूभर होता है, जब आग लगी,कई मज़दूर निकल पाने में असफल रहे। कई मज़दूर तो तीसरी मंज़िल से कूद कर जान बचाने की कोशिश किए लेकिन उसमें वे बुरी तरह घायल हो गए। इस कारखाने में 150-200 करीब मज़दूर काम करते थे,जिनके आने-जाने के लिए भूतल पर सिर्फ़ एक ही दरवाज़ा था। फैक्टरी में कोई आपातकालीन गेट की व्यवस्था नहीं थी। मज़दूरों के लिए फैक्टरी में सुरक्षा के इन्तज़ाम मालिकों और सरकार के लिए प्राथमिक नहीं होते,उनके लिए मज़दूरों की मौत पर भी अपना मुनाफ़ा मायने रखता है।

मुण्डका में हुए अग्निकांड के बाद भी दिल्ली के कारखानों में आग लगने का सिलसिला रुका नहीं। इसके बाद बवाना औद्योगिक क्षेत्र में सेक्टर-2 के एच-15 फैक्ट्री में आग लग गई। जब फैक्ट्री में आग लगी उस समय अन्दर 13 मज़दूर थे। सभी सुरक्षित बाहर निकल गए। फैक्ट्री में टेप बनता था और उसमें कुल 17 मज़दूर 7000-8000 के मासिक वेतन पर काम करते थे। वहीं दूसरी घटना मुस्तफ़ाबाद में हुई। जिस फैक्ट्री में आग लगी थी वहां भट्टी से इलेक्ट्रानिक व इलेक्ट्रिकल सामान पर रंग किया जाता था। आग लगने से एक महिला समेत सात मज़दूर बुरी तरह से झुलस गए। झुलसी हुई हालत में उन्हें जग प्रवेश चंद व जीटीबी अस्पताल में भर्ती करवाया। एक मज़दूर को डाक्टरों ने मृत घोषित कर दिया। ये कारखाना अवैध रूप से बिना पंजीकरण के चलाया जा रहा था। मुस्तफ़ाबाद की बात करें तो जिस फैक्ट्री में आग लगी थी वो किसी औद्योगिक इलाके में नहीं बल्कि रिहाइश इलाके में थी। यहां ढेरों ऐसे कारखाने हैं जो बिना पंजीकरण के चल रहे हैं। ऐसे में यहां किसी भी तरह के सुरक्षा मानकों का पालन नहीं होता है। जहां आग लगी उसके कुछ दूरी पर ही आम आदमी पार्टी के विधायक का घर भी है। पर उन्हें इन सब की कोई सुध ही नहीं है। आम आदमी के कई विधायक तो खुद फैक्ट्री मालिक है जो अपनी फैक्ट्री में कोई श्रम कानून लागू नहीं करते।

पूरी दिल्ली में 80 प्रतिशत फैक्टरियां बिना पंजीकरण के चल रही हैं जहां कोई सुरक्षा के इन्तज़ाम नहीं है और जब ऐसी घटनाएं होती हैं तब दिल्ली सरकार और केन्द्र सरकार ट्वीट कर अपनी नाकामियों पर पर्दा डालने की घटिया कोशिश करते हैं। अगर बात करें तो बीते वर्ष कारखानों में आग लगने से 162 मज़दूरों की मौत हो गई। श्रम मंत्रालय की एक रिपोर्ट बताती है कि बीते पांच वर्षो में 6500 मज़दूर फैक्ट्री, खदानों, निर्माण कार्य में हुए हादसों में अपनी जान गवां चुके हैं। इसमें से 80 प्रतिशत हादसे कारखानों में हुए। 2017-2018 कारखाने में होने वाली मौतों में 20 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है।

मज़दूरों की मौत के ज़िम्मेदार कोई और नहीं बल्कि फैक्टरी मालिक और उनके चंदे से चलने वाली पूँजीवादी पार्टियों की सरकारें हैं।

सस्ते श्रम के तौर पर महिलाओं को काम पर लगाया जाता है और निर्मम परिस्थितियों में काम करा कर मालिक अपना मुनाफ़ा पीटते हैं। इन्हीं मालिकों, पूँजीपतियों के पैसे से तमाम चुनावबाज़ पार्टियां चुनाव लड़ती हैं। वे ही इस हत्या, लूट और शोषण को कानूनी जामा पहनाते हैं जिसकी वज़ह से ये घटनाएं आम होती जा रहीं हैं। मुण्डका में हुई मौतों पर रोना रोने वाले भाजपा और आम आदमी पार्टी के हमारे हुक्मरान ही असल में इन घटनाओं को प्रश्रय देते हैं। उनके लिए मज़दूरों की मौत महज़ एक संख्या है। 'आम आदमी पार्टी' के गिरीश सोनी से लेकर राजेश गुप्ता जैसे तमाम नेता-मन्त्री स्वयं कारखाना-मालिक हैं और किसी श्रम कानून को लागू नहीं करते, मज़दूरों को कोई सुरक्षा उपकरण नहीं देते हैं। सवाल तो यह भी बनता है कि दिल्ली के एमसीडी में मौजूद भाजपा नेतृत्व अतिक्रमण के नाम पर गरीबों की रोजी-रोटी उजाड़ रही है, वहीं तमाम अवैध कारखानों से लेकर फैक्ट्रियों में सुरक्षा इंतजामों की कमी पर चुप्पी साधे हुए है! ऐसा क्यों? क्योंकि इनमें से तमाम फैक्ट्री कारखानों के मालिक भाजपा के नेता या उसके समर्थन ही है। भाजपा के ज्यादातर नेता-मंत्री खुद ही कारखाने चलवाते हैं, उन्हें लाइसेंस दिलवाते हैं। दिल्ली के 15 लाख कारखानों में रोज़ जान हथेली पर रखकर मज़दूर इनकी तिजोरियां भरते हैं।

ये ही कफ़नखसोट दिल्ली में हुई अनाज़मंडी की घटना से लेकर बवाना में मज़दूरों की मौत और अब मुण्डका में हुए इस भीषण मौत के तांडव के ज़िम्मेदार हैं।

दिल्ली में बसे 29 औद्योगिक क्षेत्रों के हालात यह हैं कि किसी भी कारख़ाने में सुरक्षा के नियम-क़ानून लागू नहीं होते। ऊपर से केजरीवाल नौटंकी करता है कि उसने मज़दूरों की ज़िन्दगी बदल दी और उनका वेतन बढ़ा दिया। काग़ज़ों में वेतन बढ़ोत्तरी की घोषणा के बाद अब 8 घण्टे के कार्य दिवस के हिसाब से अकुशल मज़दूरों का वेतन 16,064 से बढ़कर 16,506 रुपये, अर्धकुशल मज़दूरों का वेतन 17,693 से बढ़कर 18,187 रुपये और कुशल मज़दूरों का वेतन 19,473 से बढ़कर 20019 रुपये हो गया है। पर असलियत तो हम सब जानते हैं कि दिल्ली में काम कर रहे करोड़ों मज़दूरों पर इससे रत्ती भर भी फ़र्क़ नहीं पड़ेगा क्योंकि पूरी दिल्ली के औद्योगिक क्षेत्रों में श्रम क़ानून लागू ही नहीं होते। दिल्ली के अन्दर एक बड़ी आबादी घरेलू कामगारों की है, जिनके लिए न्यूनतम वेतन एक खोखले शब्द के अलावा कुछ है ही नहीं। एक तरफ़ मज़दूरों से लेकर कामगारों की बड़ी आबादी रोज़ 200 रुपये में अपना हाड़-माँस गलाती है और बदतर हालात में जीने को मजबूर है, वहीं दूसरी तरफ़ केजरीवाल मज़दूरों का 'मसीहा' बनने की नौटंकी कर रहा है।

यह है नौटंकीबाज़ केजरीवाल, जिसकी पार्टी असल में दिल्ली के बड़े व्यापारियों, पूँजीपतियों की सेवा करती है, पर वोट लेने के लिए मज़दूरों से झूठे वादे करती है। आजकल जब भी जनता केजरीवाल को उसके वादे याद दिलाती है, तो वह यह कहकर बच निकलने की कोशिश करता है कि केन्द्र में बैठी मोदी सरकार इसे कुछ करने नहीं दे रही है। लेकिन यहाँ ग़ौरतलब बात यह है कि श्रम विभाग केजरीवाल सरकार के पास है और न्यूनतम वेतन लागू करने और सुरक्षा के इन्तज़ाम कारख़ानों में लागू करने के लिए इसे मोदी सरकार से मंज़ूरी लेने की कोई आवश्यकता नहीं है, फिर भी इतने लम्बे कार्यकाल में इन्होंने कहीं भी कोई श्रम क़ानून लागू क्यों नहीं कराया? ज़ाहिर सी बात है कि श्रम क़ानून लागू करने की इस सरकार की कोई मंशा नहीं है, इन्होंने सिर्फ़ नौटंकी की है और मज़दूरों को धोखा देने के अलावा और कोई काम नहीं किया है।

मुंडका में लगी आग के मसले पर **भारत की क्रान्तिकारी मज़दूर पार्टी** ने दिल्ली के अलग-अलग इलाकों में अभियान चलाया और मज़दूरों को संगठित कर दिल्ली सचिवालय पर प्रदर्शन किया और ज्ञापन सौंपा। उन्हें चेताया गया कि अगर तत्काल माँगें नहीं मानी जाती तो आने वाले समय में इसके ख़िलाफ़ बड़ा आन्दोलन किया जायेगा। माँगें इस प्रकार थीं:

– कारख़ानों में सुरक्षा के पुख़्ता इन्तज़ाम किये जायें।

श्रम कानूनों को तत्काल लागू कियाजायें।

दोषी मालिकों को कड़ी से कड़ी सज़ा दी जाये।

मारे गये मज़दूरों के परिवार को 50 लाख रुपये मुआवज़ा दिया जाये।

देश में भयंकर गर्मी और पानी तथा बिजली के संकट का मुख्य कारण

(पेज 16 से आगे)

कारण बढ़ती गर्मी या कोयले की आपूर्ति में लॉजिस्टिकल कठिनाई है। कोयले और अन्य जीवाश्म ईंधन की अतिसीमित उपलब्धता और इनके इस्तेमाल से हो रहे पर्यावरण विनाश ऐसे तथ्य हैं जो हमें मात्र स्कूल में पढ़ाया जाता है लेकिन कभी इसे दूर करने की कोई ठोस योजना नहीं बनाई जाती है। इस मुनाफ़ा-केन्द्रित व्यवस्था में बड़े-बड़े तेल, गैस और कोयले की कम्पनियों का मुनाफ़ा सुनिश्चित करने के लिए इनका इस्तेमाल बदस्तूर जारी रखा जाएगा। सौर ऊर्जा और पवन ऊर्जा जैसे अक्षय ऊर्जा (रिन्यूएबल एनर्जी) स्रोतों का आज भी बेहद कम इस्तेमाल होता है। भारत की तीन-चौथाई ऊर्जा कोयले से आती है। हालाँकि विकसित पूँजीवादी देश पेरिस सन्धि के आधार पर पिछड़े देशों पर कोयले का इस्तेमाल कम करने पर ज़ोर डाल रहे हैं। लेकिन सच तो यह है कि न ही विकसित पूँजीवादी देश न ही पिछड़े पूँजीवादी देशों के हुक्मरानों ने कभी भी अक्षय ऊर्जा के उपयोग को व्यवहारिक बनाने का प्रयास किया। अगर ऐसा होता भी है तो पेट्रोल, कोयला आदि से पैसा पीटने वाली बड़ी-बड़ी कम्पनियों के मुनाफ़े का क्या होगा?

यह जो भीषण गर्मी और पानी तथा बिजली की संकट से हम जूझ रहे हैं इसका समाधान सीधे इस व्यवस्था के आमूलचूल परिवर्तन से जाकर जुड़ता है। 2015 की पेरिस सन्धि की असफलता और 2021 के सी.ओ.पी 26 वार्ता की नौटंकी से यह साफ़ है की इस पूँजीवादी व्यवस्था के तहत पर्यावरण विनाश को नहीं रोका जा सकता। पूँजीवादी व्यवस्था ने अपने मुनाफ़े की हवस में प्रकृति को इस हद तक तबाह कर दिया है कि वह भविष्य में मनुष्य जाति के अस्तित्व को ही ख़तरे में डाल रहा है। इस समस्या का समाधान पूँजीवाद के विनाश और समाजवाद की स्थापना से ही हो सकता है। एक समाजवादी व्यवस्था ही पर्यावरण विनाश को रोक सकती है क्योंकि यह व्यवस्था लोगों की ज़रूरतों को केन्द्र में रख कर काम करती। मनुष्य खुद प्रकृति का अंग होता है। सभी प्रजातियों के समान मनुष्य भी प्रकृति के साथ एक अन्तर्क्रिया करता है और उस प्रक्रिया में प्रकृति में भी परिवर्तन आता है और मनुष्य में भी। अन्य जानवरों से मनुष्य इस मायने में अलग है कि वह सचेतन तौर पर उत्पादन करता है और प्रकृति से उसकी अन्तर्क्रिया इस बुनियादी अर्थ में अलग है। यह अन्तर्क्रिया प्रकृति का विनाश एक ख़ास व्यवस्था यानी मानव समाज के एक ख़ास दौर में ही करती है: शोषणकारी वर्ग समाज के दौर में और ख़ास तौर पर पूँजीवादी वर्ग समाज के दौर में। यह पूँजीवादी वर्ग समाज के सामाजिक सम्बन्ध हैं जो प्रकृति और पर्यावरण के विनाश के लिए जिम्मेदार हैं। एक शोषणरहित वर्गविहीन समाज में मनुष्य और प्रकृति के बीच ऐसी अन्तर्क्रिया नहीं होगी जो प्रकृति और मनुष्य समाज दोनों में ही परस्पर पतन की जिम्मेदार बने। वह अन्तर्क्रिया मानव समाज को भी समृद्ध करेगी और प्रकृति और पर्यावरण को भी संरक्षित करेगी, समृद्ध बनायेगी। इसलिए अगर हम अपने आने वाली पीढ़ियों के लिए इस पृथ्वी को रहने योग्य बनाना चाहते हैं तो हमें पूँजीवादी व्यवस्था को जड़ से उखाड़ फेंकना होगा।

बढ़ती महँगाई और मज़दूरों के हालात

– भारत

'बहुत हुई महँगाई की मार, अबकी बार मोदी सरकार' याद कीजिए ये नारा 2014 में खूब प्रचलित हुआ था। आज इस मोदी सरकार को आए 7 साल से अधिक हो गए। जहां एक तरफ बढ़ती महँगाई से पूँजीपति अकूत मुनाफ़ा बना रहा हैं, जिसमें मोदी सरकार उनका भरपूर साथ दे रही है, जहां बीते एक वर्ष में महँगाई बेरोज़गारी ने आम जनता की कमर तोड़ कर रख दी है, वहीं मोदी के चहेते अदानी की संपत्ति बीते एक साल में 57 अरब डॉलर बढ़ी है। साल 2022 में अब तक कमाई के मामलें में गौतम अडानी टॉप पर हैं। अदानी जैसे बड़े पूँजीपति ही महँगाई के दौर में जनता की लूट से मालामाल नहीं हो रहे हैं, बल्कि धनी किसानों-कुलकों, बड़े व्यापारियों, छोटे व मँझोले मालिकों समेत समूचा पूँजीपति वर्ग ही इस बहती गंगा में हाथ धो रहा है। इसलिए गेहूँ की कीमतें अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में बढ़ते ही गेहूँ पैदा करने वाले धनी किसानों-कुलकों ने उसे सरकार को लाभकारी मूल्य पर बेचने से इंकार कर दिया और खुले बाज़ार में 30 से 40 प्रतिशत ऊँचे दामों पर बेचा! यही पूँजीवादी धनी किसान व और कुलक अभी कुछ समय पहले सरकारी लाभकारी मूल्य के रेट के लिए सरकार के खिलाफ आन्दोलन कर रहे थे, 'मज़दूर-किसान एकता' और 'सार्वजनिक वितरण प्रणाली बचाओ' का नारा दे रहे थे! लेकिन उन्हें लाभकारी मूल्य के रूप में केवल अपना न्यूनतम बेशी मुनाफ़ा सुरक्षित रखने वाला 'सेफ्टी नेट' चाहिए था लेकिन यह अधिकार भी चाहिए था कि बाज़ार में कीमतें जब भी ऊँची हों तो वे बाज़ार में और ऊँचा मुनाफ़ा कमा सकें। इन्हीं पूँजीवादी धनी किसानों-कुलकों ने आढ़तियों और व्यापारियों के रूप में गेहूँ की भारी जमाखोरी भी कर रखी है ताकि गेहूँ के निर्यात पर मोदी सरकार द्वारा आनन-फानन में रोक के बाद घरेलू बाज़ार में उसकी कीमतों को बढ़ा सकें, उस पर सट्टेबाज़ी कर सकें और ग़रीब मेहनतकश आबादी के पेट पर लात मार सकें।

देश की मेहनतकश आबादी बुनियादी ज़रूरत की चीज़ों से भी वंचित होती जा रही है। खाने-पीने और बुनियादी ज़रूरतों की चीज़ों की महँगाई बेरोकटोक बढ़ी है। इस महँगाई ने देश की तीन-चौथाई से भी अधिक आबादी के सामने जीने का संकट पैदा कर दिया है। सब्ज़ियों से लेकर अनाज और दूध तक के बेहिसाब बढ़ते दामों ने मेहनतकश जनता के साथ-साथ निम्न मध्यवर्गीय आबादी तक के लिए पेटभर पौष्टिक खाना खा पाना दूभर बना दिया है। रेल-बस के भाड़े, अस्पताल की फ़ीस-दवाएँ, स्कूल-कॉलेज के खर्चे, बिजली-पानी, मकानों के भाड़े—हर चीज़ में जैसे आग लगी हुई है। पिछले वित्त वर्ष में 6.95 फीसदी की दर से महँगाई बढ़ी है। पिछले एक वर्ष में ऑयल और फैट्स में 18.79 फीसदी की वृद्धि आई है और इसके साथ सब्जियों में 11.64, मसालों में 8.50 अनाज में 4.93 फीसदी की बढ़ोतरी हुई है। इससे अंदाज़ा लगाया जा सकता है आज देश में महँगाई कितनी बढ़ गई है। आलू, प्याज, टमाटर, दाल, गेहूँ और चावल की क़ीमतें आसमान छू रही हैं जिसकी वजह से वे ग़रीबों की थाली से ग़ायब होती जा रही हैं।

अगर मेहनतकशों के जीवन की बात करें उनका जीवन और कठिन होता जा रहा है। आज किसी भी शहर में जीवन व्यापन के लिए कम से कम 25000 रुपए मासिक चाहिए। पर देश की लगभग तीन-चौथाई आबादी प्रति दिन सिर्फ़ 30 से 40 रुपये पर गुज़ारा करती है। इनके भोजन में पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन जैसे ज़रूरी तत्व सन्तुलित मात्रा में नहीं रहते। देश के क़रीब 55 करोड़ असंगठित मज़दूरों की आबादी का पेट बमुश्किल भर पाता है लेकिन उन्हें पौष्टिक खाना तो कभी नहीं मिलता। सरकारी नियम के अनुसार औद्योगिक मज़दूरों को 2700 कैलोरी और भारी काम करने वाले को 3000 कैलोरी भोजन मिलना चाहिए। अधिकांश आबादी को तो इतना भोजन पहले ही नहीं मिल पाता था और इस महँगाई के दौर में तो और भी मुश्किल हो गया है। संयुक्त राष्ट्र की एक रिपोर्ट के अनुसार लगभग 63 फ़ीसदी भारतीय बच्चे भूखे सोते हैं। सोचिए, उन बच्चो का इस महँगाई में क्या हाल होगा। मज़दूर-मेहनतकश 12-14 घण्टे अपना हाड़ मांस गला के इतना ही कमा पाते हैं कि अपने पेट का गड्ढा भर सकें, पर इस समय वह भी मुश्किल होता जा रहा है। महँगाई के कारण बहुत-से लोग नियमित दाल, हरी सब्ज़ी, अण्डे आदि खाना या चाय पीना छोड़ चुके हैं।

जूता फैक्ट्री में काम करने वाले अनिल बताते हैं कि महँगाई के कारण अपनी ज़िन्दगी के सबसे बुरे दौर से गुज़र रहे हैं। 12 घण्टे काम करने के बाद महीने के अंत में सिर्फ 9500 रुपए हाथ में आते हैं और तुरन्त खत्म हो जाते है। कमरे के किराए का 3000 चला जाता है। और चार लोगो के परिवार का राशन खरीदने में ही 5500 तक खर्च हो जाते हैं। बाक़ी किसी भी काम के लिए पैसा बचता ही नहीं है और अन्त में उधार लेना पड़ता है। अनिल बताते हैं कि हाथ में 500-1000 रुपए बड़ी मुश्किल से बच भी जाते थे पर अब तो सारा पैसा खाने में ही खर्च हो जाता है। बच्चो को ट्यूशन पढ़ाना तक बन्द करना पड़ा। यहां तक की गांव में माता-पिता को भी पैसे नहीं भेज पाते।

निर्माण कार्य में लगे गंगाराम बताते हैं कि अब तो महीने में मुश्किल से 15 दिन काम मिलता है। रोज़ लेबर चौक पर खड़े होते हैं और ज़्यादातर खाली हाथ ही लौटना पड़ता है। उनकी पत्नी फैक्ट्री में काम करती है जिसमें उसे 5500 रुपए मिलते हैं। दोनो के काम करने पर भी महीने में बमुश्किल 11000 कमा पाते हैं। खाने की चीज़ों के दाम बढ़ने से उनके परिवार का गुज़ारा करना मुश्किल हो गया है। उनकी आय का भी ज़्यादातर हिस्सा सिर्फ खाने में खर्च होता है। बाक़ी अन्य ज़रूरत की चीज़ों में कटौती करने को मज़बूर हैं। स्कूल की फीस न भरने के कारण उनके बच्चे को भी स्कूल से निकाल दिया गया।

वास्तव में महँगाई मुनाफ़े की अन्तहीन हवस पर टिके पूँजीवादी ढाँचे में ही निहित है। सरकारी नीतियाँ भी महँगाई के लिए ज़िम्मेदार होती हैं। भोजन सामग्री में महँगाई की असली वजह ये है कि खेती की उपज के कारोबार पर पूँजीवादी धनी किसानों-कुलकों, बड़े व्यापारियों, आढ़तियों, दलालों, सटोरियों और कालाबाज़ारियों का क़ब्ज़ा है। आज सिर्फ़ मज़दूरी बढ़ाने की लड़ाई लड़ना ही पर्याप्त नहीं है क्योंकि अगर मज़दूरी कुछ बढ़ भी जाये तो दूसरी तरफ़ महँगाई बढ़ जाने से हालात और भी बदतर हो जाते हैं। जब तक मुनाफ़े के लिए उत्पादन होगा तब तक महँगाई की समस्या बार-बार प्रकट होगी और इसकी कीमत हमेशा आम मेहनतकश आबादी को चुकानी होगी। इसलिए इस मुनाफ़े की व्यवस्था के ख़ात्मे की तैयारी करनी होगी।

नहीं, सर्वोच्च न्यायालय के महामहिमो! वेश्यावृत्ति कोई "पेशा" या "चयन की आज़ादी" नहीं है!
'देह व्यापार' स्त्रियों-बच्चों के विरुद्ध शोषण, हिंसा, असहायता और विकल्पहीनता में लिथड़ा पूँजीवादी मवाद है!

– शिवानी

सर्वोच्च न्यायलय द्वारा 19 मई को वेश्यावृत्ति को वैध क़रार दिए जाने सम्बन्धी फ़ैसला दिया गया है जिसकी काफ़ी चर्चा हो रही है। इन फ़ैसले के तहत 'देह व्यापार' में लगी स्त्रियों के "पुनर्वास" को लेकर सुप्रीम कोर्ट द्वारा राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों को कुछ दिशानिर्देश दिए गए हैं। साथ ही उक्त फ़ैसले में सर्वोच्च न्यायलय ने वेश्यावृत्ति अथवा 'देह व्यापार' को एक "पेशा" य "व्यवसाय" माना है और कहा है कि पुलिस "अपनी इच्छा से" वेश्यावृत्ति कर रही "सेक्स वर्कर्स" के ख़िलाफ़ कोई कार्यवाई न करे। इसके अलावा आदेश में यह भी कहा गया है कि "स्वैच्छिक तौर पर" की जाने वाली वेश्यावृत्ति ग़ैर-क़ानूनी नहीं है। वैसे भारत में 'देह व्यापर' स्पष्ट तौर पर कभी अवैध नहीं था और इसे कभी दण्डनीय अपराध भी नहीं माना गया है। हालाँकि वेश्यालय चलाना, दलाली, स्त्रियों समेत इंसानों की तस्करी इत्यादि ग़ैर-क़ानूनी और दण्डनीय है।

तमाम क़िस्म के उदारवादी व नारीवादी इस फ़ैसले का स्वागत कर रहे हैं और काफ़ी ख़ुशी मना रहे हैं। भारत का यह "प्रगतिशील" तबक़ा इस फ़ैसले को भी "प्रगतिशील" बता रहा है और इसके लिए अदालत की भूरि-भूरि प्रशंसा करते नहीं थक रहा है। ऐसे लोगों का मानना है कि वेश्यावृत्ति के वैधीकरण के साथ स्त्रियों का शोषण ख़त्म हो जायेगा और यह फ़ैसला औरतों द्वारा "अपने शरीर को बेचने की आज़ादी" पर अदालत की मुहर है। यह तर्क सतही तौर पर भी कितना भोथड़ा और दरिद्र है यह स्पष्ट है। वास्तव में "चयन की स्वतन्त्रता" का यह बुर्जुआ व्यक्तिवादी तर्क पूँजीवादी व्यवस्था की ही रुग्ण और पतनोन्मुख वैचारिक पैदावार है जो विकल्पहीनता को ही "चयन की आज़ादी" के तौर पर पेश करती है।

यूं तो भारत में वेश्यावृत्ति से जुड़े आधिकारिक आंकड़े मौजूद ही नहीं है, लेकिन विभिन्न अनाधिकारिक स्रोतों के अनुसार भारत में 30 लाख से लेकर 1 करोड़ औरतें देह-व्यापार में हैं। इनमें से एक ठीक-ठाक संख्या 12 से 15 वर्ष की आयु वाली छोटी बच्चियों की है जो हर साल इस अमानवीय कारोबार में धकेली जाती हैं। यह इनकी "चयन की आज़ादी" नहीं है बल्कि पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा थोपा गया अभिशाप है। कोई ताज्जुब नहीं कि इनमें से अधिकांश ग़रीब मेहनतकश घरों से आने वाली स्त्रियाँ और बच्चे हैं।

वैसे तो उपरोक्त बातें किसी भी तर्कशील दिमाग़ में भी कई सवाल पैदा करेंगी। मसलन 'देह व्यापार' है ही क्यों, क्यों स्त्रियाँ वेश्यावृत्ति के "पेशे" में जाती हैं, क्या कोई भी "अपनी इच्छा से" वेश्यावृत्ति में जाना चाहता है, क्या औरतों-बच्चों के साथ वेश्यावृत्ति के नाम पर होने वाला शोषण और यौन हिंसा मौजूदा सामाजिक-आर्थिक संरचना के बारे में कुछ नहीं बताता? क्या वर्ग समाज और विशेषकर पूँजीवाद ने हर वस्तु की तरह स्त्रियों के शरीर और यौन सम्बन्धों को भी माल में तब्दील कर ख़रीदने-बेचने की चीज़ नहीं बना दिया है? लेकिन अफ़सोस, सर्वोच्च न्यायालय के महामहिम न्यायाधीश इन असुविधाजनक प्रश्नों पर चुप हैं।

वेश्यावृत्ति वर्ग समाज की देन हैं जब समाज के वर्गों में बंटने के साथ ही स्त्रियों की ग़ुलामी की शुरुआत हुई। लेकिन पूँजीवाद ने इसे मुनाफ़ा देने वाले एक व्यापक और संगठित कारोबार में तब्दील कर दिया है। यह वह समाज है जिसमें हर वस्तु बाज़ार में बेची और ख़रीदी जा सकती है, स्त्रियों की देह भी। सवाल तो यह है कि स्त्रियों का शोषण और उत्पीड़न क्या महज़ किसी क़ानून या आदेश से ख़त्म हो सकता है? जिन लोगों को इस फ़ैसले के बाद यह लग रहा है कि अब 'देह-व्यापार' में लगी स्त्रियों को इससे सामाजिक सुरक्षा, न्याय या सम्मान मिलेगा, वे बचकानी समझदारी का शिकार हैं। जो सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था यानी कि पूँजीवाद स्त्रियों की सस्ती श्रमशक्ति से लेकर उनके शरीर तक को मुनाफ़े के इस्तेमाल करता है, उसके समूल नाश के साथ ही स्त्रियों के हर प्रकार के शोषण-उत्पीड़न का ख़ात्मा संभव है। वास्तव में, सर्वोच्च न्यायलय का यह फ़ैसला पूँजीवाद की वास्तविकता को ही सामने ला देता है जो मानता है कि देह-व्यापार एक "व्यवसाय" है!

दरअसल, ऐसे तमाम फ़ैसले और दिशानिर्देश पूँजीवाद और वर्ग समाज द्वारा पैदा की गयी तमाम समस्याओं के मूल कारणों पर पर्दा डालने का काम ही करते हैं और व्यवस्था के भीतर ही कुछ पैबन्दसाज़ी करने की नसीहतें देते हैं। सुप्रीम कोर्ट के हालिया फ़ैसले को भी इसी रोशनी में देखा जाना चाहिए।

दिल्ली में बुलडोज़र राज

– केशव आनन्द

पिछले दिनों दिल्ली के तमाम इलाक़ों में दिल्ली नगरपालिका द्वारा "अतिक्रमण" हटाने के नाम पर आम मेहनतकश आबादी की झुग्गियों पर बुलडोज़र चलाकर उनके घरों को उजाड़ने का काम किया गया। अतिक्रमण हटाना तो बहाना था। असलियत यह थी कि इस पूरे प्रकरण में मुख्यतः मेहनतकश मुस्लिम आबादी को निशाना बनाया गया। अगर वाकई अतिक्रमण हटाना मकसद था तो सबसे पहले विजय नगर, अशोक विहार, शालीमार बाग, कैलाश कॉलोनी, ग्रेटर कैलाश, पीतमपुरा, आदि की अमीरज़ादों, धन्नासेठों और व्यापारियों व पूँजीपतियों की कोठियों पर बुलडोज़र चलना चाहिए था क्योंकि पूरी दिल्ली में इन धनपशुओं से ज़्यादा अतिक्रमण तो किसी ने किया ही नहीं है। जहाँगीरपुरी, शाहीन बाग़, मंगोलपुरी, मदनपुर खादर, नजफगढ़, द्वारका समेत दिल्ली के तमाम इलाक़ों के मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में दिल्ली नगरपालिका द्वारा झुग्गियों पर बुलडोज़र चलाने का प्रयास किया गया। सरकार का कहना था कि दिल्ली में "अतिक्रमण" हटाने के लिए इन बस्तियों को उजाड़ा जा रहा है। इन इलाक़ों में केवल लोगों के घरों पर ही नहीं बल्कि उनकी रेहड़ियों और दुकानों पर भी बेरहमी से बुलडोज़र चला दिये गये।

ग़ौरतलब है कि जिन भी इलाक़ों में बुलडोज़र चलाये गये, उनमें से कहीं भी लोगों को झुग्गियों के तोड़े जाने का नोटिस नहीं दिया गया। और सुबह लोग जब अपने अपने काम पर गये थे, तब नगर निगम द्वारा बुलडोज़र के ज़रिए उनकी झुग्गियों को तोड़ दिया गया। जब लोगों ने इसका विरोध किया, तब दिल्ली पुलिस ने प्रतिरोध कर रहे लोगों पर लाठीचार्ज कर दिया। इस दौरान भाजपा और आरएसएस ने सुनियोजित और सुव्यवथित तरीके से मुस्लिम आबादी को निशाना बनाकर उन्हें उजाड़ने का काम किया है। ग़ौरतलब है कि इस पूरे प्रकरण में केवल ग़रीब मुस्लिम आबादी के ही घर नहीं उजड़े, बल्कि बुलडोज़र की ज़द में ग़रीब हिन्दू आबादी की झुग्गियाँ भी आयी हैं। कई जगहों पर, जहाँ मेहनतकश हिन्दू और मुस्लिम आबादी साथ-साथ रहती थी, वहाँ बुलडोज़र ने दोनों ही मज़हब के लोगों के घर गिराये। इस रूप में यह देखा जा सकता है कि मुस्लिम समुदाय के ख़िलाफ़ होने के साथ-साथ फ़ासीवाद हर धर्म की आम मेहनतकश मज़दूर आबादी के भी ख़िलाफ़ होता है।

भाजपा सरकार बुलडोज़र के ज़रिए जहाँ एक ओर आम मेहनतकश आबादी के सर से छत छीन रही है, वहीं दूसरी ओर इसे धार्मिक रंग देकर एक बार फिर साम्प्रदायिक माहौल बनाने की कोशिश कर रही है। ग़ौरतलब है कि बीते 10 अप्रैल को रामनवमी के दिन देशभर के अलग-अलग हिस्सों में साम्प्रदायिक घटनाएँ हुईं। विक्रम संवत नववर्ष से लेकर रामनवमी व नवरात्र के दौरान देशभर में संघ परिवार की गुण्डा वाहिनियों द्वारा भगवा झण्डा फहराने, भड़काऊ भाषण देने, मुसलमान महिलाओं को बलात्कार की धमकी देने, मुसलमानों पर हमले करने का काम किया। दिल्ली के जहाँगीरपुरी इलाक़े में पिछले हनुमान जयन्ती के दिन विश्व हिन्दू परिषद और आरएसएस ने मुस्लिम बहुल इलाक़ों में जाकर साम्प्रदायिक नारे लगाये और लगातार धार्मिक उन्माद भड़काने की कोशिश की। मुस्लिम बहुल इलाक़ों में बुलडोज़र चलाना इसी कड़ी में बढ़ाया गया अगला क़दम है। इसके ज़रिए एक बार फिर भाजपा और आरएसएस दिल्ली समेत देशभर में जनता के बीच मज़हब के नाम पर दंगे करवाने की साज़िश कर रही है। दिल्ली में चलाये जा रहे बुलडोज़र पर भाजपा के नेताओं के बयान भाजपा और आरएसएस की मंशा को साफ़-साफ़ ज़ाहिर करते हैं। भाजपा के दिल्ली प्रदेश अध्यक्ष आदेश गुप्ता ने यह बयान दिया कि दिल्ली में रहने वाले "रोहिंगिया और बांग्लादेशियों" के घरों पर बुलडोज़र चलाये जा रहे हैं। वहीं कपिल मिश्रा समेत तमाम नेताओं ने भी इस सन्दर्भ में मुस्लिम विरोधी बयान दिये। आम आदमी पार्टी ने भी अपनी घिनौनी असलियत ज़ाहिर करते हुए भाजपा के बयान के जवाब में कहा कि इन "रोहिंग्या व बंगलादेशी मुसलमानों" को भाजपा ने ही इन इलाकों में बसने दिया। सच्चाई यह है कि यह आबादी हिन्दुस्तानी ग़रीब मुसलमान आबादी है। वैसे तो मज़दूर वर्ग को इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता कि किसी पड़ोसी मुल्क के दुखियारे ग़रीब अपनी जान बचाने के वास्ते उसके देश में प्रवासी के रूप में आ जाएँ। मज़दूर वर्ग का मानवतावाद ही सच्चा मानवतावाद होता है और वह अपने ऐसे ग़रीब मेहनतकश भाइयों का दिल और बाँहें खोलकर स्वागत करता है। यह अन्धराष्ट्रवादी पूँजीवादी ताक़तें होती हैं जो कि हर देश में ऐसे ग़रीब मेहनतकशों के विरुद्ध उन्माद को भड़का कर टुटपुँजिया आबादी के बीच जुनून और कट्टरता फैलाती हैं और इस रास्ते मालिकों, ठेकेदारों और पूँजीपतियों की सेवा करती हैं।

इस दौरान दिल्ली के प्रगतिशील संगठनों ने जब आरएसएस और भाजपा के इस फ़ासीवादी एजेण्डे का विरोध किया, तब दिल्ली पुलिस ने उनपर भी लाठियाँ बरसायी और प्रतिरोध करने वालों के ख़िलाफ़ नाजायज़ कार्रवाई भी की। आज प्रशासन से लेकर दिल्ली पुलिस का भगवाकरण साफ़ रूप में दिखायी दे रहा है। आरएसएस और भाजपा का हिन्दुत्ववादी फ़ासीवादी एजेण्डा आज विधायिका के साथ-साथ कार्यपालिका और न्यायपालिका की भी पोर-पोर में समा चुका है। इसकी अभिव्यक्ति आज देश की न्याय प्रणाली और पुलिस प्रशासन के कारनामों में साफ़ तौर पर दिख रही है।

फ़ासीवाद पूँजीवादी संकट के दौर में बड़ी पूँजी की सेवा करने के लिए टुटपुँजिया वर्ग के रूमानी उभार के साथ आता है। यह टुटपुँजिया वर्ग के रूमानी आन्दोलन के समक्ष एक छद्म शत्रु पेश करता है। और उसके जीवन की तमाम समस्याओं का ज़िम्मेदार इस छद्म शत्रु को ही बताता है। जीवन के हर मोड़ पर अनिश्चितता की लटकी तलवार के डर से (पूँजीवादी संकट के दौर में तो और भी अधिक) यह वर्ग आसानी से इस प्रतिक्रियावादी राजनीति के बहकावे में आ जाता है। ग़ौरतलब है कि फ़ासीवाद इस छद्म शत्रु के दायरे को लगातार बड़ा करता जाता है, और इस दायरे में उन सभी लोगों को शामिल कर देता है, जो फ़ासीवाद के ख़िलाफ़ अपनी आवाज़ उठाते हैं। फ़ासीवाद इसके लिए अपने देश के अनुरूप किसी ख़ास मज़हब, नस्ल, जाति, राष्ट्रीयता जैसे पहचान का इस्तेमाल छद्म शत्रु के रूप में करता है। जर्मनी में हिटलर, इटली में मुसोलिनी ने अपने फ़ासीवादी एजेण्डे को लागू करने का यही तरीका अपनाया था। भारत में फ़ासीवाद साम्प्रदायिकता का चोगा पहनकर आया है। आज हिन्दुत्ववादी फ़ासीवाद जनता को धर्म के नाम पर गुमराह करने का काम कर रहा है, ताकि इसकी आड़ में देश के बड़े पूँजीपतियों की सम्पत्ति में दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि कर सके। आज आरएसएस और मोदी सरकार जनता को आपस में लड़ाकर जनविरोधी क़ानून और नीतियों लेकर आ रही है। साथ ही पूँजीपतियों के मुनाफ़े को सुनिश्चित करने के लिए मज़दूरों के हक़ अधिकारों पर हमले भी कर रही है।

लेकिन हर दौर में जनता ने फ़ासीवाद को इतिहास के कूड़ेदान में डालने का काम किया है। हर दौर में आख़िरकार फ़ासीवादियों को मुंह की खानी पड़ी है। इसलिए आज एक बार फिर आम मेहनतकश आबादी को मोदी सरकार की इस साम्प्रदायिक राजनीति को समझना होगा, और अपने असल मुद्दों पर एकजुट होकर, इनकी तमाम साम्प्रदायिक और पूँजीपरस्त नीतियों के नाकाम करना होगा।

श्रीलंका का संकट : नवउदारवादी नीतियों की ख़ूनी जकड़ का विनाशकारी परिणाम

(पेज 13 से आगे)

देखा गया। लेकिन अर्थव्यवस्था अभी भी उपभोक्ता माल निर्यात आधारित थी। औद्योगिक और अवरचनागत आधारित विकास की ओर प्रयास बेहद सीमित रहे। यह विकास इतना नहीं था कि विश्व बाज़ार के झटके सम्भाल सके। अधिकतर विकास पर्यटन आधारित ही रहे। 2012 में एक बार फिर विश्व स्तर पर उपभोक्ता माल की कीमतों में गिरावट ने श्रीलंका के विदेशी मुद्रा भण्डार में गिरावट आई, भुगतान संतुलन की संकट पैदा हुई। साथ ही श्रीलंका को विशाल अवरचनागत विकास के लिए हासिल कर्ज़ का भी भुगतान करना था। एकबार फिर 2016 में आईएमएफ पर निर्भरता बनी। 2016 से 2019 तक तीन सालों की अवधि के लिए 150 करोड़ का कर्ज़ आईएमएफ से लिया गया। 1965-66 से लेकर 2016-19 तक का लोन श्रीलंका का आईएमएफ से लिया गया 16वाँ कर्ज़ था। इन सभी कर्ज़ों के लिए शर्तें वही थी - राजकोषीय घाटे को कम से कम करना। ऐसा करने के लिए सभी सब्सिडी, विशेषतौर पर खद्य सब्सिडी समाप्त करना, कल्याणकारी नीतियों पर कम से कम ख़र्च साथ ही श्रीलंका को अप्रत्यक्ष करों के माध्यम से अधिक राजस्व जुटाने की सलाह दी गई जैसे कि वैट, सर्विस टैक्स, राष्ट्र निर्माण कर आदि। सब्सिडी की जगह सीधे नकद देना, एक लचीली विनिमय दर व्यवस्था को अपनाना, और व्यापार व निवेश को उदार बनाना।

संकट के वर्तमान कारक

पहले से लड़खड़ाती अर्थव्यवस्था को कई तात्कालिक झटके लगे। पहला अप्रैल 2019 में कई चर्च और लक्ज़री होटलों में बम विस्फोट हुए जिसमें लगभग 250 लोग मारे गए। इन विस्फोटों ने अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटकों के आगमन को गम्भीर रूप से प्रभावित किया। पर्यटकों का अगमन लुढ़कता हुआ नवम्बर 2019 तक 47 प्रतिशत तक गिर गया। इस गिरावट ने 2019 में विदेशी मुद्रा भण्डार को गम्भीर रूप से प्रभावित किया।

2019 में गोटाबाया राजपक्षे चुनावों में जीत कर सत्ता में आने के बाद श्रीलंका की जनता को दो बड़े वायदे किये। पहला करों में भारी कटौती और दूसरा किसानों को भारी छूट। गैट/वैट कर 2019 से 2020 के बीच में लगभग आधे रह गए। फिर जनता पर कोरोना महामारी का कहर बरपा हुआ। पर्यटन बुरी तरह प्रभावित रहा, कॉफी, रबर, चाय, मसालों और कपड़ो का निर्यात बुरी तरह से प्रभावित रहा। महामारी के दौरान पर्याटन भी प्रभावित रहा और विदेशों में काम कर रहे श्रीलंका के प्रवासियों की नौकरियाँ जाने या आय कम होने की स्थिति में रेमिटेंस भी प्रभावित रहा। वहीं दूसरी ओर महामारी ने अधिक सरकारी खर्च को अनिवार्य कर दिया। 2021 में राजकोषीय घाटा 10 प्रतिशत से ऊपर जाता रहा और जीडीपी की तुलना में सार्वजनिक ऋण 119 प्रतिशत अधिक था।

अर्थव्यवस्था की ऐसी गम्भीर स्थिति में गोटाबाया राजपक्षे ने विदेशी मुद्रा भण्डार को तेज़ी से समाप्त होने से बचाने के लिए एकाएक बिना रासायनिक खाद के ऑर्गेनिक खेती करने की नीति अपनाने का निर्णय लिया। मंत्रीमण्डल के कई मंत्री रासायनिक खाद से होने वाले नुकासन के विशेषज्ञ बन गए। रासायनिक खाद के खिलाफ़ एक के बाद एक झूठे दावे और अफ़वाहें फैलाई गईं। तमाम कृषि विशेषज्ञों और वैज्ञानिकों की चेतावनियों को अनसुना करते हुए गोटाबाया राजपक्षे ने बिना रासायनिक खाद के खेती करने की घोषणा कर दी और रासायनिक खाद पर प्रतिबंध लगा दिया गया। यह निर्णय कृषि उत्पादकता के लिए विनाशकारी साबित हुआ। चाय, मसाले, नारियल, फल, आदि का उत्पादन पचास प्रतिशत से भी कम रहा। लम्बे समय से चावल उत्पादन के क्षेत्र में आत्मनिर्भर श्रीलंका को कुल उपभोग का 54 प्रतिशत चावल विदेशों से आयात करना पड़ा। इतना ही नहीं किसानों को छूट देने का वायदा कर शासन में आये गोटाबाया राजपक्षे को किसानों के आन्दोलन के आगे झुकना पड़ा और उन्हें मुआवज़ा देना पड़ा। रासायनिक खाद पर प्रतिबंध श्रीलंका की अर्थव्यवस्था को दो तरह से प्रभावित कर गया। एक कृषि उत्पाद विशेषकर चावल का आयात करना पड़ा जो पहले से खाली हो चुके विदेशी मुद्रा भण्डार पर प्रहार ही था। दूसरा किसानों को मुआवज़ा देने में 4000 करोड़ श्रीलंकाई रुपया खर्च हो गया जबकि रासायनिक खाद पर ख़र्च का हिसाब 3600 करोड़ श्रीलंकाई रुपया था।

इस तरह श्रीलंका के पूरे संकट को हम श्रीलंकाई अर्थव्यवस्था में मुनाफे की गिरती औसत दर के संकट, असंतुलित आर्थिक संरचना, विश्व बाज़ार पर निर्भरता और फिर आईएमएफ द्वारा नवउदारवादी नीतियों को थोपने के रोशनी में देख सकते हैं। नवउदारवादी नीतियों के साथ निरंकुश राजनीतिक सत्ताओं का आना और जनता के आर्थिक व राजनीतिक अधिकारों का हनन यह उस पूरी प्रक्रिया को दर्शाता है जिससे एशिया, अफ्रिका और लातिन अमेरिका के देश गुज़र रहे हैं। नवउदारवादी नीतियों के समक्ष श्रीलंका की अरक्षिता उसकी अर्थव्यवस्था के चरित्र की वजह से अधिक है। जल्द ही श्रीलंका आईएमएफ से या चीन-रूस से कर्ज़ लेने के लिए मज़बूर होगा और इस मज़बूरी का फायदा अपने अपने तरीके से सभी उठाएँगें। जनता के बीच से प्रतिरोध लगातार जारी है लेकिन राजनीतिक विकल्पहीनता की वजह से जनता के कष्टों का कोई निकट समाधान नज़र नहीं आ रहा। आने वाला समय श्रीलंका की जनता के लिए और कठिन साबित होने जा रहा है।

ज्ञानव्यापी विवाद और फ़ासिस्टों की चालें

– अजीत

आज पूरे देश में बेरोजगारी अपने चरम पर है। महंगाई ने लोगों की कमर तोड़ दी है। आर्थिक संकट लगातार गहराता जा रहा है। मज़दूरों को लगातार तालाबंदी और छँटनी का सामना करना पड़ रहा है। मेहनतकश लोगों की जिंदगी बदहाली में गुजर रही है। ठीक इसी समय भाजपा एवं आरएसएस ने अपने सहयोगी संगठनों के माध्यम से पूरे देश में सांप्रदायिक उन्माद फैलाने की कोशिशें तेज कर दी हैं। जबसे इन फासीवादियों ने सत्ता संभाली है तब से तमाम ऐसे छोटे-छोटे धार्मिक त्योहारों, पर्वों को बड़े पैमाने पर मनवाया जा रहा है, जिन्हें आम तौर पर नहीं मनाया जाता था, एवं उनका इस्तेमाल धार्मिक रूप से अल्पसंख्यक मुसलमानों के खिलाफ सांप्रदायिक उन्माद फैलाने के लिए किया जा रहा है। यह फासीवादी ताकतें धार्मिक रूप से अल्पसंख्यक मुसलमानों को सिर्फ धार्मिक त्योहारों में ही नहीं बल्कि हर मौके पर निशाना बना रही है और उनको दुश्मन के तौर पर प्रस्तुत कर रही हैं। मुसलमानों और इस्लाम से जुड़े विश्वासों, मूल्य-मान्यताओं पर हमला कर रही है। गौ-रक्षा, लव जिहाद, हलाल विवाद, हिजाब, नमाज और लाउडस्पीकर ऐसे कई सारे मुद्दे उठाए जा रहे हैं। इसी क्रम में एक नया मुद्दा उठ गया है- ज्ञानव्यापी मस्जिद का विवाद। इस मसले को लेकर तमाम हिंदुत्ववादी संगठनों ने नफरत एवं सांप्रदायिकता फैलाना शुरू कर दिया है। यह मुद्दा पूरे देश में चर्चा का विषय बना हुआ है।

क्या है मामला?

ज्ञानव्यापी मस्जिद बनारस की बेहद पुरानी मस्जिद है जो काशी विश्वनाथ मंदिर के पास में स्थित है। इसका निर्माण 17 वीं शताब्दी के आस-पास मुगलों के द्वारा किया गया था। हिंदू पक्ष के द्वारा यह कहा जा रहा है कि इस मस्जिद का निर्माण मंदिर तोड़कर किया गया था। इस मस्जिद के नीचे स्वयंभू शिवलिंग है इसलिए इस मस्जिद को यहां से हटा कर यह जमीन हिंदू पक्ष को दे देनी चाहिए। 1992 में बाबरी मस्जिद के ढांचे को गिराने के बाद से ही संघ परिवार ने इस मामले को तूल देना शुरू कर दिया था। बाबरी विध्वंस के समय यह नारा लगाया जाता था कि 'अयोध्या तो सिर्फ झांकी है, काशी, मथुरा बाकी है।'

सबसे पहले 1991 में यह मामला कोर्ट में आया और एक याचिका दायर की गई जिसमें कहा गया कि मस्जिद को उसके स्थान से हटाकर वह जगह हिंदू समुदाय को दे देनी चाहिए क्योंकि इसका निर्माण 2000 साल पूर्व राजा विक्रमादित्य ने किया था।17 वीं शताब्दी में औरंगजेब द्वारा इसे तोड़ दिया गया। इस याचिका को दायर करने में काशी विश्वनाथ मंदिर ट्रस्ट भी शामिल था। 1998 में मस्जिद के मैनेजिंग कमिटी ने आवेदन दिया जिसमें 'प्लेसेस ऑफ वरशिप एक्ट,1991' का तर्क दिया गया था। यह ऐक्ट 1991 में नरसिम्हा राव सरकार द्वारा लाया गया था जिसके तहत 15 अगस्त 1947 तक जो भी धार्मिक स्थल जिस रूप में मौजूद है उसे उसी रूप में मौजूद माना जाएगा और उसे उक्त धर्म से संबंधित भी माना जाएगा। बाबरी मस्जिद का मामला इस ऐक्ट का अपवाद था क्योंकि उसका मामला आजादी के पहले से कोर्ट में लड़ा जा रहा था। इस आवेदन को निचली अदालत ने तो रद्द कर दिया लेकिन हाई कोर्ट ने इस पर सुनवाई की और इस मुद्दे पर स्टे लगा दिया। अगले 20 सालों तक यह मामला शांत रहा। उसके बाद 2019 में सुप्रीम कोर्ट के अयोध्या राम जन्मभूमि मामले में सुनवाई के बाद एक बार फिर आवेदन किया गया और ज्ञानव्यापी मस्जिद के भारतीय पुरातात्विक सर्वेक्षण विभाग के द्वारा सर्वे करने की मांग की गई। इस पर हाईकोर्ट ने स्टे लगा दिया।

इसके बाद साल 2022 में यह मामला फिर से तूल पकड़ता है, जब पांच हिंदू महिलाओं ने एक आवेदन दर्ज किया और कहा कि मस्जिद के पिछले दीवार के पास मां श्रृंगारी गौरी स्थल है और मस्जिद की दीवारों पर इसके प्रमाण भी है इसलिए उन्हें वहां पूजा करने की अनुमति दी जाए। वाराणसी के निचले कोर्ट ने इस याचिका की सुनवाई की और एक कमीशन नियुक्त कर कहा की वीडियोग्राफी की जाए कि कहां तस्वीरें मौजूद है। इस कमीशन में वैसे लोगों को नियुक्त किया गया जिनसे मुस्लिम पक्ष को आपत्ति थी। इसके बाद भी कमीशन के सदस्यों को नहीं बदला गया और सर्वे शुरू हुआ। सर्वे बाधित भी हुआ क्योंकि मुस्लिम पक्ष का दावा था कि सर्वे करने आए कमीशन ने बगैर निर्दिष्ट स्थल की जांच किए वीडियोग्राफी शुरू कर दी। मस्जिद परिसर के अंदर की वीडियोग्राफी भी की गयी जो कि कोर्ट के आदेश में नहीं था । इसको लेकर मुस्लिम पक्ष ने हाईकोर्ट में याचिका भी दायर की जो कि हाई कोर्ट के द्वारा खारिज कर दी गई। इस प्रकार वीडियोग्राफी सर्वे जारी रहा। सर्वे होने के बाद यह फुटेज वाराणसी के निचले कोर्ट में जमा कर दिया गया जिस पर फैसला आना अभी बाकी है ।

इस वीडियो के कोर्ट में जमा होने के बाद से ही मुख्य मीडिया ने इस पूरे मामले को एकतरफा ढंग से प्रस्तुत करते हुए यह दिखाया कि वीडियो में साफ तौर से देखा जा सकता है कि मस्जिद परिसर के भीतर एक शिवलिंग है। यह इस बात का प्रमाण है कि इस मस्जिद का निर्माण मंदिर तोड़कर किया गया था। मुख्य मीडिया इस पूरे मसले को मंदिर बनाम मस्जिद के तौर पर प्रस्तुत कर, लोगों में नफरत और धार्मिक उन्माद फैलाने की पूरी कोशिश कर रही है। वैसे इस मीडिया से आज के समय में और कुछ उम्मीद भी नहीं की जा सकती क्योंकि इन बड़े-बड़े मीडिया हाउसेस को फंडिंग बड़े-बड़े पूंजीपति घरानों से ही होती है और यह उनकी ही सेवा करते हैं। इस मामले में भी मीडिया आम लोगों को बांट कर अपने आकाओं की सेवा में जुटी हुई है। मन्दिर के भीतर शिवलिंग के होने की अफवाह को गोदी मीडिया इसीलिए जनता में फैलाने के प्रयासों में लगा हुआ है।

इस पूरे मामले में कई और भी बातें सामने आई है जैसे कि प्लेसेस आफ वरशिप एक्ट, 1991 की अवहेलना करते हुए यह सर्वे करने का आदेश दिया गया। इसके अलावा इस सर्वे में मस्जिद परिसर के भीतर की वीडियोग्राफी को नहीं रोकना। यह कुछ बातें हैं जो दिखाती है कि आज की न्यायपालिका में किस तरीके से फासीवादी तत्वों ने घुसपैठ कर ली है। इससे पहले भी 2019 में राम जन्मभूमि बाबरी मस्जिद मामले में जिन तर्कों के आधार पर फैसला सुनाया गया वह अपने आप में इस बात का सबूत है कि यह न्यायपालिका इन फासीवादियों के हाथ की बस एक कठपुतली है।

अब यह सवाल उठता है कि आखिर यह मामला अभी के समय में ही क्यों उठाया जा रहा है?

इस ज्ञानव्यापी मस्जिद के मसले को अभी के समय में पूरे देश के सामने सबसे बड़े मुद्दे के तौर पर पेश किया जा रहा है क्योंकि आज लोगों की हालत गरीबी, महंगाई और बेरोजगारी से सबसे ज्यादा खराब है। आर्थिक संकट और गहराता जा रहा है। आम मेहनतकश लोगों में इस सरकार के खिलाफ़ काफ़ी असंतोष और गुस्सा है। ऐसे में आम मेहनतकश आबादी अपने जरूरी मुद्दों महंगाई, गरीबी और बेरोजगारी को भूल जाए इसके लिए ज़रूरी है कि उसके सामने एक नकली मुद्दा पेश किया जाये। यह काम मंदिर-मस्जिद का विवाद काफ़ी अच्छे तरीक़े से कर सकता है। इसीलिए यह मुद्दा उठाया जा रहा है। इससे आम लोग अपने जरूरी मुद्दों पर एकजुट नहीं होंगे और उनकी लड़ाई कमज़ोर होगी। इसलिए आम लोगों को गैर-जरूरी मुद्दों में उलझा कर रखा जा रहा है। यह फासीवादी ताकतें हमेशा से ऐसा ही करती रही है। इन तमाम गैर जरूरी मुद्दों को जरूरी मुद्दों के तौर पर पेश करती रही है और जनता की तमाम परेशानियों का कारण एक नकली दुश्मन को बताती रही है। भारत में काफ़ी समय से धार्मिक रूप से अल्पसंख्यक मुसलमानों को तमाम दिक्कतों एवं परेशानियों का कारण बताया जाता रहा है। इस मामले को तूल देने के पीछे एक और कारण यह है कि आज फासीवादी मोदी सरकार इन नकली मुद्दों की आड़ में लगातार बड़ी पूंजी की सेवा कर रही है और जनता का ध्यान उस ओर जाने से रोक रही है।

अगर हम देश के कई हिन्दू मन्दिरों की बात करें, तो एक दौर में उन्हें भी बौद्ध मठों को तोड़कर बनाया गया था। कुछ को जैनियों के पूजास्थलों को भी तोड़कर बनाया गया था। इसके अलावा, स्वयं हिन्दुओं के भीतर अलग-अलग सेक्टों जैसे कि शाक्त, शैव व वैष्णवों ने एक दूसरे के पूजा स्थलों को तोड़कर अपने पूजा स्थल बनाये हैं। आज क्या उन सभी मन्दिरों को भी तोड़कर पहले वाले धार्मिक पूजा स्थलों को बना दिया जाना चाहिए? और क्या पता की बौद्ध मठों के स्थानों की भी पुरातात्विक जाँच की जाये, तो किसी आदिम कबीले का कोई पूजा स्थल मिल जाये! तो क्या फिर उसके लिए भी आम मेहनतकश जनता को आपस में एक-दूसरे का सिर-फुटौव्वल करना चाहिए? यह प्रतिक्रियावादी शक्तियों का काम है कि वह अतीत के मुर्दे उखाड़कर जनता की भावनाओं को भड़काये और उसे आपस में ही लड़ाये। यही काम आज संघ परिवार और भाजपा सरकार कर रही है।

एक इंसाफपसंद नागरिक होने के नाते इस पूरे मसले को लेकर हमें क्या सोचना चाहिए?

हमें यह सोचना चाहिए कि मंदिर-मस्जिद का मसला हमारे लिए कोई मसला नहीं है। ज्ञानव्यापी मस्जिद, मंदिर तोड़कर बनाई गई थी या नहीं यह हमारे लिए कोई सवाल ही नहीं है क्योंकि अतीत में हुई घटनाओं का बदला वर्तमान में नहीं लिया जा सकता। जिस समय कथित रूप से मंदिर को तोड़ने की बात कही जा रही है वह मध्यकाल का समय था और इसका भी कोई प्रमाण नहीं है कि ज्ञानव्यापी मस्जिद का निर्माण किसी मन्दिर को तोड़कर हुआ था। मध्यकाल में राज्य का आधार धर्म हुआ करता था और सभी धर्म के राजाओं को अपने राज्य के साथ-साथ धर्म को भी स्थापित करना पड़ता था। उस पूरे समय में पूरी दुनिया में ऐसे धार्मिक स्थलों को तोड़ा गया और उनके जगह पर नए धार्मिक स्थल बनाया गये। आज बनारस में भी मौजूद दर्जनों मंदिरों को बौद्धों और जैनों के धार्मिक स्थलों को तोड़कर बनाए जाने का ऐतिहासिक साक्ष्य मौजूद है।यदि हम इतिहास में हुई घटनाओं का वर्तमान से बदला लेना चाहते हैं तो पता नहीं कितने मंदिरों और मस्जिदों को तोड़ना पड़ेगा। फिर तो हम यही करते रह जायेंगे! हमें यह भी बात याद रखनी चाहिए कि मध्यकाल में कोई संविधान, नियम-कानून नहीं था। लेकिन आज है। उस नियम कानून को ताक पर रखकर ऐसे गतिविधियों को अंजाम देने की कोशिश की जा रही है।

आज जरूरत है कि हम नकली और गैर-जरूरी मुद्दों में फंसने की जगह अपने असली मुद्दों को पहचानें और उनपर एक हो जाएं। आज ज़रूरत है इन गैर-जरूरी मुद्दों के पीछे की असली राजनीति को समझने की। आज शासक वर्ग चाहता है कि हमें सांप्रदायिक दंगों की आग में झोंक दें। हमें जाति और धर्म के नाम पर बांट दें लेकिन हमें उसके साजिश को नाकाम करने की जरूरत है। हम ऐसा तभी कर पाएंगे जब हम अपने भीतर से अतार्किक, अनैतिहासिक और अवैज्ञानिक दृष्टिकोण को हटा पाएंगे और अपने असली मुद्दों पर वर्ग के आधार पर एक होते हुए आन्दोलन खड़ा करेंगे। आज के समय के क्रांतिकारियों की जिम्मेदारी है कि वें आम मेहनतकश लोगों तक सही इतिहास की जानकारी ले जायें और इन फासीवादियों की असली मंशा को उजागर करे। तभी जाकर इन फासीवादियों की असली मंशा को नाकामयाब किया जा सकता है।

"लोगों को परस्पर लड़ने से रोकने के लिए वर्ग चेतना की ज़रूरत है। ग़रीब मेहनतकश व किसानों को स्पष्ट समझा देना चाहिए कि तुम्हारे असली दुश्मन पूँजीपति हैं, इसलिए तुम्हें इनके हथकण्डों से बचकर रहना चाहिए और इनके हत्थे चढ़ कुछ न करना चाहिए। संसार के सभी ग़रीबों के, चाहे वे किसी भी जाति, रंग, धर्म या राष्ट्र के हों, अधिकार एक ही हैं। तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम धर्म, रंग, नस्ल और राष्ट्रीयता व देश के भेदभाव मिटाकर एकजुट हो जाओ और सरकार की ताक़त अपने हाथ में लेने का यत्न करो। इन यत्नों में तुम्हारा नुकसान कुछ नहीं होगा, इससे किसी दिन तुम्हारी ज़ंजीरें कट जाएँगी और तुम्हें आर्थिक स्वतन्त्रता मिलेगी।"

– भगतसिंह

('साम्प्रदायिक दंगे और उनका इलाज' लेख से)

क्रान्तिकारी मज़दूर शिक्षण माला-1

मज़दूरी के बारे में

– अभिनव

हम मज़दूर जानते हैं कि मज़दूरी की औसत दर में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं। लेकिन ये उतार-चढ़ाव एक निश्चित सीमा के भीतर होते हैं। इस लेख में हम समझेंगे कि पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर मज़दूरी में आने वाले उतारों-चढ़ावों के मूलभूत कारण क्या होते हैं और उसकी अन्तिम सीमाएँ कैसे निर्धारित होती है। लेकिन शुरुआत हम कुछ बुनियादी बातों से करेंगे।

उजरती मज़दूरी पूँजीवाद के अस्तित्व की बुनियादी शर्त है। पूँजी इसी के ज़रिए बेशी मूल्य को पैदा करती है और उसे हड़पती है जो कि पूँजीपति के मुनाफ़े का स्रोत होता है। पूँजीपति अपना पूँजी निवेश दो हिस्सों में करता है: पहला, मशीनों, कच्चे माल, अवरचना आदि, जिसे हम स्थिर पूँजी कहते हैं; दूसरा, मज़दूरों को भाड़े पर रखने के लिए, यानी मज़दूरों की श्रमशक्ति ख़रीदने के लिए, जिसे हम परिवर्तनशील पूँजी कहते हैं।

मशीनें, कच्चा माल, आदि अपने आप माल का उत्पादन नहीं करते हैं। केवल जीवित श्रम, यानी काम करने वाले मज़दूर ही, इन मशीनों व कच्चे माल आदि के उत्पादक उपभोग की प्रक्रिया को अंजाम देते हैं जिसके नतीजे के तौर पर माल का उत्पादन होता है। माल के मूल्य में मशीनों, कच्चे माल आदि पर हुआ निवेश, यानी मशीनों, कच्चे माल आदि का मूल्य ज्यों का त्यों स्थानान्तरित हो जाता है। यह अपने आप में कोई नया मूल्य नहीं पैदा कर सकता है। इसीलिए इन पर होने वाले निवेश को स्थिर पूँजी कहा जाता है।

मज़दूर अपने पूरे दिन के कार्यकाल के एक हिस्से में अपनी श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक वस्तुओं के मूल्य के बराबर मूल्य पैदा करता है, जिसके इर्द-गिर्द मूल्य के बराबर मज़दूरी आम तौर पर उसे पूँजीपति देता है। मज़दूरी श्रमशक्ति की माँग व आपूर्ति के सम्बन्धों और मज़दूर वर्ग द्वारा अपनी मज़दूरी को बढ़ाए जाने के लिए किए जाने वाले वर्ग संघर्ष के अनुसार श्रमशक्ति के मूल्य के ऊपर या नीचे हो सकती है। उपरोक्त कारकों पर निर्भर रहते हुए मज़दूरी की दर में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं।

बहरहाल, मज़दूर अपने कार्यदिवस यानी दिन के काम के घण्टों के दूसरे हिस्से में पूँजीपति वर्ग के लिए बेशी मूल्य पैदा करता है, जो कि पूँजीपति को मुफ्त में बिना किसी अतिरिक्त निवेश के प्राप्त होता है। फिर भी पूँजीपति वर्ग के आर्थिक नज़रिये से मज़दूर के साथ कोई धोखा नहीं हुआ होता है! पूँजीवाद का नियम है कि समतुल्यों का विनिमय होता है, यानी सामान्य नियम के तौर पर मूल्य में बराबर मालों का ही विनिमय होता है। लेकिन यदि पूँजीपति मज़दूर से जितना लेता है उतना ही वापस मज़दूरी के रूप में देता है, तो फिर पूँजीपति वर्ग का मुनाफ़ा कहाँ से आता है? इसी बात को मार्क्स के पहले पूँजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्री नहीं समझ पाए थे। मार्क्स ने पहली बार इसे समझा और बताया कि पूँजीपति मज़दूर से उसका श्रम नहीं ख़रीदता बल्कि श्रमशक्ति (यानी एक निश्चित अवधि में काम करने की उसकी क्षमता) को ख़रीदता है, जो कि पूँजीवादी समाज में स्वयं एक माल में तब्दील हो चुकी होती है। हर कोई जानता है कि, सामाजिक तौर पर, एक उत्पादक एक दिन में अपने जीवन के पुनरुत्पादन के लिए जरूरी वस्तुओं से बेशी पैदा कर सकता है। अगर ऐसा न होता तो समाज में कभी वर्ग और वर्ग विभाजन पैदा ही नहीं होता। 18वीं और 19वीं सदी के पूँजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्री भी इस सच्चाई को जानते थे कि एक उत्पादक अपने जीविकोपार्जन के लिए आवश्यक वस्तुओं से बेशी उत्पादन करता है। इसलिए पूँजीपति जब मज़दूर से उसकी श्रमशक्ति ख़रीदता है, जिसका मूल्य श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक वस्तुओं के मूल्य से निर्धारित होता है, तो वह उसको उसकी श्रमशक्ति का मूल्य ही देता है। इस रूप में समतुल्यों का ही विनिमय हुआ है और मज़दूर के शोषण की व्याख्या किसी प्रकार के "धोखे" या "चोरी" के रूप में नहीं की जा सकती। लेकिन एक मज़दूर की श्रमशक्ति एक कार्यदिवस में ख़र्च होने की प्रक्रिया में अपने मूल्य से ज़्यादा मूल्य पैदा करती है। दूसरे शब्दों में, एक श्रमशक्ति जितने श्रम के ख़र्च से पैदा होती है, अपने ख़र्च होने की प्रक्रिया में वह उससे ज़्यादा श्रम मुहैया करती है।

इसलिए मज़दूर अपने कार्यदिवस के एक हिस्से में अपनी श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन के लिए काम करता है जिसे हम आवश्यक श्रमकाल कहते हैं, जबकि दूसरे हिस्से में वह पूँजीपति के लिए बेशी मूल्य का उत्पादन करता है, जिसे हम अतिरिक्त श्रमकाल कहते हैं। आवश्यक श्रमकाल के दौरान काम करने की एवज़ में मज़दूर को मज़दूरी मिलती है जबकि अतिरिक्त श्रमकाल में काम की एवज़ में उसे कुछ नहीं मिलता और उसका बेशी उत्पाद पूँजीपति द्वारा हड़प लिया जाता है जो कि बिकने पर बेशी मूल्य का रूप ग्रहण कर लेता है और पूँजीपति के मुनाफ़े का स्रोत होता है। यह है पूँजीपति के

मुनाफ़े के स्रोत का घृणित क्षुद्र रहस्य। पूँजीवादी व्यवस्था में मज़दूरी 'एक दिन में दिये गये श्रम की कीमत' का रूप लेती है और पूँजीवादी शोषण की छिपाती है क्योंकि आवश्यक और अतिरिक्त श्रमकाल समय और जगह में अलग-अलग नहीं हो रहे होते हैं, बल्कि वे एक ही एक कार्यदिवस का निरन्तरतापूर्ण अंग होते हैं। इसलिए ऐसा दिखता है कि मज़दूर को 'एक दिन की मेहनत की कीमत' अदा की गयी है। पूँजीवादी व्यवस्था में मज़दूरी का यह स्वरूप मज़दूर के शोषण को छिपाता है और पूँजीवादी शोषण पर पर्दा डालता है। असल में, मज़दूर अपनी श्रमशक्ति बेचता है और बदले में आवश्यक श्रमकाल में अपनी श्रमशक्ति के बराबर मूल्य का भी उत्पादन करता है और अतिरिक्त श्रमकाल में पूँजीपति के लिए बेशी मूल्य का भी उत्पादन करता है, जो कि पूँजीपति के मुनाफ़े का स्रोत होता है।

यानी, मज़दूर के कार्यदिवस के दो हिस्से होते हैं जिसमें से एक में मज़दूरी के बराबर मूल्य पैदा होता है, तो दूसरे में मुनाफा। मज़दूर वर्ग और पूँजीपति वर्ग लगातार इस नये पैदा होने वाले मूल्य में अपना हिस्सा बढ़ाने की जद्दोजहद में लगे रहते हैं। मज़दूर वर्ग अपनी मज़दूरी बढ़ाने का प्रयास करता है जबकि पूँजीपति वर्ग विभिन्न तरीकों से मज़दूरी के सापेक्ष मुनाफे का हिस्सा बढ़ाने का प्रयास करता है। पूँजीपति वर्ग ऐसा कार्यदिवस को लम्बा करके भी करता है (जिसकी एक भौतिक सीमा होती है) जिसे हम निरपेक्ष बेशी मूल्य कहते हैं, और ऐसा वह श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन की लागत को कम करके भी करता है, जिससे कि कुल श्रमकाल तो उतना ही रहता है, लेकिन उसमें आवश्यक श्रमकाल, यानी मज़दूर जिसमें 'अपने लिए' काम करता है, का हिस्सा सापेक्षत: घट जाता है और नतीजतन अतिरिक्त श्रमकाल का हिस्सा बढ़ जाता है, जिसके फलस्वरूप बेशी मूल्य की दर भी बढ़ जाती है। इस दूसरे तरीके को हम सापेक्ष अतिरिक्त मूल्य कहते हैं। जैसे-जैसे पूँजीवाद उन्नत होता है, सापेक्ष अतिरिक्त मूल्य द्वारा बेशी मूल्य बढ़ाने की पद्धति ज़्यादा प्रमुख बनती जाती है। इस प्रकार से बेशी मूल्य को तब बढ़ाया जा सकता है जबकि मज़दूर वर्ग की श्रमशक्ति के पुनरुत्पादन के लिए आवश्यक वस्तुओं को पैदा करने वाले उद्योगों में, यानी मज़दूरी-उत्पाद पैदा करने वाले उद्योगों में, उत्पादकता बढ़ती है, लागत घटती है और नतीजतन औसत कीमत नीचे आती है। जब मज़दूरी-उत्पादों की कीमतें नीचे आती हैं तो मज़दूर की श्रमशक्ति का मूल्य भी कम होता है और पूँजीपति वर्ग उसकी मज़दूरी को घटा सकता है (भले ही यह कमी हमेशा रुपये की मात्रा में नज़र न आये)। इसलिए पूँजीपति वर्ग हमेशा श्रमशक्ति के मूल्य को कम करना चाहता है, मज़दूरी-उत्पादों की कीमतों को नियन्त्रित रखना चाहता है। यह दीगर बात है कि अपने आन्तरिक अन्तरविरोधों और पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की अराजक गति के कारण यह ज़रूरी नहीं होता कि वह हमेशा ऐसा कर ही पाये।

आम तौर पर एक ऐतिहासिक प्रवृत्ति के रूप में पूँजीवाद हर माल के ही मूल्य को घटाता है क्योंकि यह मुनाफ़े की ख़ातिर उत्पादकता का विकास करता जाता है। पूँजीपति वर्ग की आन्तरिक प्रतिस्पर्द्धा और पूँजीपति वर्ग व मज़दूर वर्ग के बीच की प्रतिस्पर्द्धा इस बात को सुनिश्चित करती है। बचकानी सोच रखने वाले कुछ लोगों को लगता कि पूँजीपति वर्ग कीमतें बढ़ाकर मुनाफ़ा बढ़ाता है! सच्चाई यह है कि पूँजीपति वर्ग जिस प्रक्रिया से मुनाफ़े को बढ़ाने का प्रयास करता है, ठीक वही प्रक्रिया श्रम की उत्पादकता का विकास करती है और ऐतिहासिक तौर पर सभी मालों के प्रति इकाई मूल्य को घटाती है और कीमतें लम्बी दूरी में इस सामाजिक मूल्य के इर्द-गिर्द ही मण्डराती हैं। लेकिन महँगाई की दर केवल सभी मालों के घटते मूल्य से निर्धारित नहीं होती है, बल्कि सभी मालों व सेवाओं के मूल्य व मज़दूर वर्ग तथा आम मेहनतकश जनता की औसत आय के स्तर के आपसी सम्बन्ध से तय होती है। इन दोनों के सम्बन्ध के आधार पर ही मज़दूर व आम मेहनतकश की वास्तविक आय और महँगाई की वास्तविक दर का पता चलता है। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की अराजक गति के कारण पूँजीवाद में ऐसे दौर होते हैं जबकि वास्तविक महँगाई बेहद बढ़ जाती है। ऐसा एक दौर आज हम अपने सामने देख रहे हैं।

पूँजीवादी व्यवस्था में महँगाई के सामान्य और विशिष्ट, दूरगामी और तात्कालिक कारणों के विषय में हमने मौजूदा सम्पादकीय में तुलनात्मक रूप से विस्तार में चर्चा की है और हम अलग से आगे के अंकों में इस पर और विस्तार से लिखेंगे। लेकिन अभी इतना समझ लेना काफ़ी होगा कि क्रान्तिकारी मज़दूर वर्ग अपने विज्ञान यानी मार्क्सवाद के विश्लेषण के उपकरणों से महँगाई की परिघटना को समझता है और यह जानता है कि महँगाई के विश्लेषण में मूलभूत कारणों के लिए हम उत्पादन के क्षेत्र पर केन्द्रित करते हैं, सर्कुलेशन यानी मालों के संचरण (उनके बेचने-खरीदने की प्रक्रिया) पर नहीं। सर्कुलेशन में होने वाले परिवर्तन उत्पादन के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तनों से निर्धारित होते हैं। वे पलटकर उत्पादन के क्षेत्र को प्रभावित ज़रूर करते हैं लेकिन अन्तिम विश्लेषण में यह उत्पादन का क्षेत्र है जो कि निर्धारक भूमिका निभाता है।

इसलिए महँगाई का कारण कुछ इजारेदार पूँजीपतियों द्वारा इजारेदार कीमतों के ज़रिए वसूला जा इजारेदार लगान नहीं है क्योंकि वह समूची अर्थव्यवस्था में मूल्य के कुल उत्पादन को प्रभावित नहीं करता और जितना मूल्य पैदा होता है, पूरी अर्थव्यवस्था के पैमाने पर उतना ही मूल्य विनिमय की प्रक्रिया यानी क्रय-विक्रय के ज़रिए वास्तवीकृत होता है। तात्कालिक तौर पर भी देखें, तो महँगाई के लिए महज़ इजारेदार पूँजीपति वर्ग ही जिम्मेदार नहीं है, बल्कि मुनाफाखोर पूँजीवादी धनी किसानों-कुलकों, जमाखोर व्यापारियों-आढ़तियों-बिचौलियों, छोटे व मँझोले पूँजीपतियों व बड़े इजारेदार व गैर-इजारेदार पूँजीपतियों समेत समूचा पूँजीपति वर्ग ही जिम्मेदार है। जब भी आर्थिक संकट के कारण और/या कोविड या युद्ध जैसे बाह्य झटकों के कारण सभी मालों व सेवाओं की आपूर्ति श्रृंखलाएँ टूटती और बाधित होती हैं, तो जमाखोरी,

(पेज 9 पर जारी)

मज़दूरी के बारे में

(पेज 8 से आगे)

सट्टेबाज़ी और ऊँची कीमतों पर बिक्री के ज़रिए मज़दूरों और मेहनतकश आबादी को लूटने का काम यह पूरा पूँजीपति वर्ग मिलकर करता है। लेकिन बाज़ार में ऊँची कीमतों पर बिक्री, मालों की जमाखोरी व उनकी कीमतों की सट्टेबाज़ी के पीछे जो मूलभूत कारण होते हैं उन्हें हमें उत्पादन के क्षेत्र में ढूँढना चाहिए। आज के दौर में महँगाई में अभूतपूर्व बढ़ोत्तरी के मामले में भी, पूँजीवादी व्यवस्था के अराजक चरित्र और पूँजीपति वर्ग के मुनाफाखोर चरित्र के कारण उत्पादन के क्षेत्र में आये झटके, यानी आपूर्ति श्रृंखलाओं का बाधित होना, ही मूलभूत कारण है। यह कुछ बदमाश इजारेदारों, दुकानदारों, व्यापारियों आदि की चाल नहीं है। यह उनकी वर्ग प्रवृत्ति होती है कि हर ऐसे मौके पर वे आपदा को अपने लिए अवसर में बदलते हैं।

साथ ही, कुल नये उत्पादित मूल्य में मुनाफे का हिस्सा बढ़ना अपने आप में मज़दूरों की औसत मज़दूरी में कमी और महँगाई के लिए जिम्मेदार नहीं होता है। यह बिल्कुल सम्भव है कि तेज़ी के दौर में समूचा उत्पादन ही बढ़े, मुनाफे की मात्रा और दर तेज़ी से बढ़े और मज़दूरी की मात्रा और दर भी बढ़े और इसके बावजूद नये उत्पादित मूल्य में मज़दूरी का हिस्सा सापेक्षिक तौर पर घट जाये। इसका उल्टा भी सम्भव है। यह भी सम्भव है कि उत्पादन ठहरावग्रस्त हो, मज़दूर आन्दोलन मज़बूत हो और मज़दूर अपने वर्ग संघर्ष के बूते मज़दूरी की मात्रा, दर और नये उत्पादित मूल्य में उसके हिस्से को बढ़ाने में कामयाब हो जाएँ। इसका उल्टा भी सम्भव है। यह भी सम्भव है कि उत्पादन मन्दी के कारण घट रहा हो, पूँजीपति अपने मुनाफे की दर, मात्रा और नये उत्पादित मूल्य में उसके हिस्से को बढ़ाने में कामयाब हो जाएँ। इतना तय है कि यदि उत्पादन स्थिर रहता है या घटता है, तो नये उत्पादित मूल्य में मुनाफे के हिस्से में होने वाली किसी भी बढ़ोत्तरी का अर्थ होगा मज़दूरी की दर, मात्रा और नये उत्पादित मूल्य में उसके हिस्से, तीनों में ही गिरावट और बाज़ार कीमतों में बढ़ोत्तरी या उनके स्थिर रहने की सूरत में या उसमें अपेक्षाकृत कम दर से गिरावट की सूरत में इसका अर्थ होगा मज़दूरों-मेहनतकशों की औसत वास्तविक आय में कमी और उनके लिए वास्तविक महँगाई में बढ़ोत्तरी।

अब मज़दूरी में आने वाले उतारों-चढ़ावों के मूलभूत कारणों के प्रश्न पर आते हैं क्योंकि वास्तविक महँगाई और वास्तविक आय का आकलन केवल मालों व सेवाओं की बाज़ार कीमतों के आधार पर नहीं किया जा सकता है, बल्कि यह औसत मज़दूरी दर के साथ उसके आकलन के आधार पर ही किया जा सकता है। बाज़ार कीमतें लम्बी दूरी में उत्पादन कीमतों के इर्द-गिर्द ही मण्डराती हैं और उत्पादन कीमतें अन्ततः मालों व सेवाओं के उत्पादन में लगने वाले सामाजिक श्रम से ही निर्धारित होती हैं। (उत्पादन कीमतों की अवधारणा को समझने के लिए मौजूदा अंक का सम्पादकीय पढ़ें)

मज़दूरी हमेशा श्रमशक्ति के बराबर ही नहीं रहती है। पूँजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र में एक 'मज़दूरी का लौह नियम' पैदा हुआ था जिसका मानना था कि मज़दूरी हमेशा उस स्तर पर निर्धारित रहती है, जिस स्तर पर मज़दूर बस अपने श्रमशक्ति का बमुश्किल पुनरुत्पादन कर सकता है। लेकिन मार्क्स ने बताया कि मज़दूर वर्ग अपने शोषण के प्रति उदासीन या निष्क्रिय नहीं रहता, बल्कि उसके विरुद्ध संघर्ष करता है। इसके साथ ही, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के दौरों, यानी तेज़ी, मन्दी व ठहराव के अनुसार, दूसरे शब्दों में मुनाफे की औसत दर की गति के अनुसार, निवेश की दरें बदलती हैं, रोज़गार की दर बदलती है और श्रमशक्ति की माँग और आपूर्ति में फर्क आता है। इसके साथ भी, मज़दूरी की दर में उतार-चढ़ाव आता है और वह श्रमशक्ति के मूल्य से ऊपर या नीचे जा सकती है। ये वे दो प्रमुख कारक हैं जिनके मिश्रित प्रभाव से मज़दूरी की औसत दर में उतार-चढ़ाव आता रहता है। लेकिन इन कारकों द्वारा भी मज़दूरी कितनी भी ऊपर या कितनी भी नीचे नहीं जा सकती है। दूसरे शब्दों में, इन कारकों के चलते मज़दूरी की औसत दर में आने वाला उतार-चढ़ाव कुछ सीमाओं के अन्दर ही होता है। वे सीमाएँ क्या हैं? आइये समझते हैं।

हमने ऊपर देखा कि एक ऐतिहासिक प्रवृत्ति के रूप में पूँजीवाद श्रमशक्ति समेत सभी मालों के सामाजिक मूल्य को घटाता है। हमने यह भी देखा कि वास्तविक महँगाई की दर मज़दूरी और मालों की बाज़ार कीमतों के बीच के सम्बन्ध से निर्धारित होती है। और हमने यह भी देखा कि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की अराजक गति और पूँजीपति वर्ग की मुनाफ़ाखोरी के कारण आर्थिक संकट व किसी महामारी या युद्ध के बाह्य झटकों के दौर में महँगाई काफ़ी तेज़ी से बढ़ती है और मज़दूर वर्ग की वास्तविक मज़दूरी दर में भारी कमी भी आती है। अन्ततः, हमने यह भी देखा कि पूँजी संचय के विशिष्ट दौर (तेज़ी, मन्दी, ठहराव) के अनुसार और साथ ही मज़दूर वर्ग के वर्ग संघर्ष के असर से मज़दूरी श्रमशक्ति के मूल्य के ऊपर या नीचे जा सकती है। लेकिन एक ऐतिहासिक प्रवृत्ति के रूप में मज़दूरी श्रमशक्ति के मूल्य के इर्द-गिर्द ही मण्डराती रहती है।

पूँजीपति वर्ग अपने मुनाफे की दर को अधिकतम सम्भव बढ़ाने के लिए हमेशा मज़दूरी को न्यूनतम स्तर पर रखने का प्रयास करता है, जबकि मज़दूर वर्ग अपने संगठित आर्थिक संघर्षों के ज़रिए हमेशा मज़दूरी को बढ़ाने के लिए लड़ता है। यह नये उत्पादित मूल्य में अपना हिस्सा बढ़ाने के लिए मज़दूर वर्ग और पूँजीपति वर्ग के बीच का संघर्ष होता है। तात्कालिक तौर पर यह संघर्ष ही मज़दूरी और मुनाफ़े के बीच सापेक्षिक सम्बन्ध को निर्धारित करता है। लेकिन आम तौर पर मज़दूरी कभी भी दीर्घकाल के लिए श्रमशक्ति के मूल्य के नीचे नहीं रह सकती है। यदि मज़दूर वर्ग एक वर्ग के तौर पर अपनी श्रमशक्ति को ही पुनरुत्पादित नहीं कर पायेगा तो वह मूल्य और बेशी मूल्य के उत्पादन के लिए निरन्तर काम करने योग्य ही नहीं रहेगा और पूँजीपति वर्ग के लिए मुनाफ़ा पैदा ही नहीं हो सकेगा। यही कारण था कि पूँजीपति वर्ग के दीर्घकालिक साझे वर्ग हितों की नुमाइन्दगी करने वाली पूँजीवादी राज्यसत्ता ने उन्नीसवीं सदी में इंग्लैण्ड में और तमाम देशों में कार्यदिवस की लम्बाई और एक न्यूनतम मज़दूरी निर्धारित करने का काम किया क्योंकि अलग-अलग वैयक्तिक पूँजीपति अपनी प्रकृति से ही पूँजीपति वर्ग के दूरगामी साझे वर्ग हित के विषय में सोच पाने में आम तौर पर अक्षम होते हैं। बाज़ार की गलाकाटू प्रतिस्पर्द्धा उन्हें इसकी इजाज़त नहीं देती है। श्रमशक्ति के भौतिक पुनरुत्पादन की यह अनिवार्य शर्त वह भौतिक सीमा है जिससे नीचे मज़दूरी की औसत दर लम्बे समय तक नहीं रह सकती है।

लेकिन मज़दूर वर्ग भी अपने वर्ग संघर्ष के ज़रिए मज़दूरी को असीम रूप से नहीं बढ़ा सकता है। यदि मज़दूरी की औसत दर इस हद तक बढ़ती है कि वह पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े की औसत दर को इतना नीचे कर दे कि पूँजी संचय की प्रक्रिया ही ठहरावग्रस्त हो जाये, तो पूँजीपति वर्ग 'निवेश हड़ताल' पर चला जायेगा, यानी अपने निवेश को कम कर देगा। जब वह अपने निवेश को कम करता है, तो रोज़गार की दर में कमी आती है, बेरोज़गार मज़दूरों की रिज़र्व सेना में रोज़गारशुदा मज़दूरों की सक्रिय सेना के सापेक्ष बढ़ोत्तरी होती है, श्रमशक्ति की आपूर्ति उसकी माँग की तुलना में बढ़ जाती है और मज़दूरी की औसत दर वापस नीचे जाती है, ताकि पूँजी संचय की प्रक्रिया सुचारू रूप से बहाल हो सके। यानी, पूँजी संचय की प्रक्रिया और उसकी निरन्तरता मज़दूरी की औसत दर के बढ़ने की ऊपरी सीमा को निर्धारित करती है।

इसलिए मज़दूरी की औसत दर पूँजीवादी व्यवस्था में इन दो सीमाओं के भीतर गति करती है। इस गति का कारण पूँजीवाद के संचय के विशिष्ट दौर यानी तेज़ी, मन्दी या ठहराव के कारण श्रमशक्ति की माँग और आपूर्ति के बदलते समीकरण और मज़दूर वर्ग व पूँजीपति वर्ग के बीच नये उत्पादित मूल्य में अपना हिस्सा बढ़ाने के लिए जारी वर्ग संघर्ष होता है। लेकिन इन दोनों ही कारकों के कारण मज़दूरी की औसत दर में जो उतार-चढ़ाव होते हैं, वे उपरोक्त दो सीमाओं के भीतर ही होते हैं। कुल मिलाकर, यह पूँजी संचय की समूची गति ही होती है जो कि मज़दूरी में आने वाले उतारों-चढ़ावों के लिए सीमाओं का निर्धारण करती है और एक पूँजीवादी व्यवस्था में यही हो सकता है। इसलिए मज़दूरी के लिए किया जाने वाला संघर्ष निश्चय ही मज़दूर वर्ग के लिए अनिवार्य है लेकिन यह अपने आप में मज़दूर वर्ग के संघर्ष का आखिरी सीमान्त नहीं है। मज़दूर वर्ग का राजनीतिक लक्ष्य मज़दूरी को बढ़ाना या सभी की मज़दूरी को बराबर कर देना नहीं है बल्कि मज़दूरी-व्यवस्था को ही समाप्त करना है। मज़दूरी को बढ़ाने के लिए सतत् जारी संघर्ष को भी इस राजनीतिक लक्ष्य के लिए संघर्ष का एक अंग बनाना हमारे लिए अनिवार्य है अन्यथा वह एक अर्थवादी संघर्ष होगा जो हमारे राजनीतिक लक्ष्य से हमें काट देगा, राजनीतिक रूप से सोचने और राजनीतिक प्रश्न उठाने यानी राज्यसत्ता का प्रश्न उठाने की क्षमता से हमें वंचित कर देगा। पूँजीपति वर्ग यही चाहता है। जो ट्रेड यूनियनें मज़दूर वर्ग की आर्थिक माँगों के लिए संघर्ष को अर्थवादी स्वरूप देकर मज़दूर वर्ग का अराजनीतिकरण करती हैं, वे पूँजीवादी ट्रेड यूनियनें हैं जो कि मज़दूर वर्ग की समूची गतिविधि को पूँजीवादी दायरों के भीतर कैद रखना चाहती हैं। भारत में सभी संसदीय वामपंथी चुनावबाज़ पार्टियों जैसे माकपा, भाकपा, भाकपा माले लिबरेशन आदि तथा अन्य पूँजीवादी पार्टियों की केन्द्रीय ट्रेड यूनियनें जैसे कि सीटू, एटक, इण्टक व ऐक्टू यही काम करती हैं।

हम मज़दूरों को मज़दूरी की पूरी व्यवस्था को समझना चाहिए। इस मज़दूरी-व्यवस्था के मूल में उत्पादन के साधनों व उपभोग के साधनों से प्रत्यक्ष उत्पादक वर्ग का वंचित होना और इन पर पूँजीपति वर्ग का एकाधिकार होना है। उत्पादन के साधनों से इस अलगाव के कारण ही मज़दूर वर्ग अपनी श्रमशक्ति को पूँजीपतियों को बेचने के लिए मजबूर होता है। जब तक यह उत्पादन सम्बन्ध बना रहेगा तब तक मज़दूरी की व्यवस्था यानी मज़दूरी-सम्बन्ध व पूँजी-सम्बन्ध बने रहेंगे। मज़दूर वर्ग का राजनीतिक लक्ष्य इस व्यवस्था को समाप्त कर सर्वहारा वर्ग के शासन और समाजवादी व्यवस्था को स्थापित करना है जिसमें सभी कल-कारखाने, खान-खदान व खेत-खलिहान पूँजीपति वर्ग से छीनकर सार्वजनिक सम्पत्ति में तब्दील कर दिये जाएँगे और मज़दूर वर्ग अपनी पार्टी के नेतृत्व में अपनी राज्यसत्ता के ज़रिए सभी आवश्यक चीज़ों का योजनाबद्ध तरीके से उपयुक्त मात्रा में उत्पादन और वितरण करेगा। ऐसा समाज मुट्ठी भर पूँजीपतियों के मुनाफे को केन्द्र में रखकर सामाजिक उत्पादन नहीं करेगा, बल्कि समाज की आवश्यकताओं के अनुसार उत्पादन और वितरण करेगा। केवल तभी हम मज़दूर मुक्त हो सकते हैं और समूची मानवता को पूँजीवाद-रूपी इस बुड्ढी मुर्गी से मुक्त कर सकते हैं जो दुनिया को युद्ध, ग़रीबी, बेरोज़गारी, पर्यावरणीय तबाही, भुखमरी, अशिक्षा और अपसंस्कृति के घटाटोप जैसे सड़े हुए अण्डों के अलावा कुछ नहीं दे सकती है। इस व्यवस्था की जगह इतिहास की कचरा-पेटी है और और इसे इस कचरा-पेटी के हवाले करने का काम केवल सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में व्यापक मेहनतकश जनता कर सकती है।

बढ़ती महँगाई का असली कारण

(पेज 1 से आगे)

बात करें तो उनकी औसत आय रु. 16,000 है। निश्चित तौर पर, इसमें सबसे कम कमाने वाले मज़दूर वे हैं जो कि अनौपचारिक व असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं और कुल मज़दूर आबादी का करीब 93 प्रतिशत बनते हैं। यानी, एक ओर महँगाई सारे रिकॉर्ड तोड़ रही है, वहीं दूसरी ओर आम मेहनतकश आबादी की औसत आमदनी विशेष तौर पर कोविड महामारी के बाद से या तो ठहरावग्रस्त है या फिर घटी है। वित्तीय वर्ष 2021-22 के पहले नौ माह के दौरान ग्रामीण खेतिहर वास्तविक मज़दूरी में मात्र 1.6 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई, जबकि ग्रामीण गैर-खेतिहर वास्तविक मज़दूरी में 1.2 प्रतिशत की गिरावट आयी। भारत की राज्य सरकारों के कर्मचारियों की औसत वास्तविक आय में 2019 से 2021 के अन्त तक 6.3 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई। इसी दौर में मनरेगा मज़दूरों की वास्तविक मज़दूरी में मात्र 4 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई। इसके अलावा, स्टॉक मार्केट में सूचीबद्ध 2800 कम्पनियों के कर्मचारियों की आय में 13 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई, हालाँकि इसका बड़ा हिस्सा मध्यवर्गीय व उच्च मध्यवर्गीय कर्मचारियों के खाते में गया और आम मज़दूरों की मज़दूरी में बहुत ही कम बढ़ोत्तरी हुई। सबसे बुरी हालत अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने वाले मज़दूरों की रही। कोविड महामारी के दौरान ही उनकी औसत मज़दूरी में बढ़ी बेरोज़गारी के कारण 22 प्रतिशत की गिरावट आयी थी। आज की हालत आप इससे समझ सकते हैं कि ई-श्रम पोर्टल पर पंजीकरण करवाने वाले 28 करोड़ असंगठित मज़दूरों की औसत मज़दूरी रु. 10,000 प्रति माह से भी कम है।

ऐसे में समझा जा सकता है कि बढ़ती महँगाई हम मेहनतकशों-मज़दूरों पर कैसा कहर बरपा कर रही है। हमें यह समझना चाहिए कि महँगाई कोई प्राकृतिक आपदा नहीं है। न ही बेरोज़गारी कोई प्राकृतिक आपदा है। यह एक ऐसी व्यवस्था द्वारा पैदा होती हैं जिसके केन्द्र में मुट्ठी भर पूँजीपतियों का मुनाफ़ा होता है। जब हम पूँजीपतियों की बात करते हैं तो इसका अर्थ केवल टाटा, बिड़ला, अम्बानी, अदानी जैसे बड़े पूँजीपति ही नहीं हैं, बल्कि बड़े दुकानदारों, ठेकेदारों, पूँजीवादी धनी किसान व कुलक भी पूँजीपति वर्ग में शामिल हैं। मौजूदा दौर में रिकॉर्ड-तोड़ महँगाई के पीछे भी यह समूचा पूँजीपति वर्ग और उसकी राज्यसत्ता खड़ी है। पूँजीपतियों का मुनाफ़ा जारी मुनाफे के संकट के दौर में कायम रखा जा सके, इसके लिए संकट का बोझ आम मेहनतकश जनता पर डाला जा रहा है, उसकी मज़दूरी को कम करके पूँजीपतियों के मुनाफे की दर को कायम रखा जा रहा है। यही महँगाई के आम बुनियादी कारण हैं। इस सम्पादकीय लेख में हम विस्तार से समझेंगे कि वर्तमान महँगाई के मूल कारण किस प्रकार समूचे पूँजीपति वर्ग की मुनाफ़ाखोरी और समूची पूँजीवादी व्यवस्था की अराजकता है।

लेकिन सबसे पहले उन ग़लत धारणाओं को समझना ज़रूरी है जो पूँजीपति वर्ग और उसके टट्टू हमारे बीच फैलाते हैं और जिसका शिकार कुछ मूर्ख बुद्धिजीवी भी हो जाते हैं।

पहली ग़लत धारणा यह है कि महँगाई बढ़ने का मूल कारण मज़दूरी में बढ़ोत्तरी है या फिर यह कि मज़दूरी में बढ़ोत्तरी की महँगाई बढ़ने में कोई भूमिका होती है। मार्क्स ने उन्नीसवीं सदी के मध्य में ही ट्रेडयूनियन नेता वेस्टन की इस दलील को तर्कों और तथ्यों समेत ख़ारिज कर दिखलाया था कि मज़दूरी बढ़ने से कीमतों के बढ़ने का कोई रिश्ता नहीं होता है। सामाजिक तौर पर, कीमतों का निर्धारण मालों के उत्पादन के लगने वाले सामाजिक रूप से आवश्यक श्रम से निर्धारित होने वाले सामाजिक मूल्य से होता है। यह सही है कि हर माल अपने मूल्य पर नहीं बिकता और उसकी कीमत उसके मूल्य से ऊपर या नीचे हो सकती है और आम तौर पर होती ही है। इसका कारण मुनाफे की दर का औसतीकरण होता है। जिन सेक्टरों में मुनाफे की दर कम होती है, उनसे उन सेक्टरों की ओर पूँजी का प्रवाह होता है जहाँ मुनाफे की दर ज़्यादा होती है। जाहिर है, हर पूँजीपति अधिक से अधिक मुनाफा कमाना चाहता है, तो वह अपनी क्षमता के अनुसार उन सेक्टरों में पूँजी निवेश को प्राथमिकता देता है जिनमें मुनाफे की दर ज़्यादा होती है। ये समीकरण बदलते रहते हैं और इसलिए पूँजीवादी व्यवस्था में अलग-अलग सेक्टरों के बीच पूँजी का आपसी प्रवाह सतत् जारी रहता है। नतीजतन, आपूर्ति और माँग के समीकरणों में बदलाव आता है और कीमतों में उतार-चढ़ाव आता रहता है। नतीजतन, माल अपने मूल्य से कम या ज़्यादा कीमत पर बिकते हैं।

कम मुनाफे की दर वाले सेक्टरों से अधिक मुनाफे की दर वाले सेक्टरों की ओर पूँजी का यह सतत् प्रवाह मुनाफे की दर का समूची अर्थव्यवस्था के स्तर पर औसतीकरण करता रहता है और इसके कारण ही मालों की उत्पादन कीमतें उनके सामाजिक मूल्य (यानी उनमें लगे सामाजिक श्रम की मात्रा) से कम या ज़्यादा होती हैं। बाज़ार में तात्कालिक तौर पर माँग और आपूर्ति के समीकरण में आने वाले बदलावों के चलते उत्पादन कीमतों में तात्कालिक उतार-चढ़ाव पैदा होते हैं, जिन्हें हम बाज़ार कीमतें कहते हैं। बाज़ार कीमतों में होने वाले उतार-चढ़ाव अन्ततः एक-दूसरे को प्रति-सन्तुलित करते हैं। लेकिन अलग-अलग मालों के लिए बाज़ार कीमतों के सामाजिक मूल्य से ऊपर या नीचे होने के बावजूद समूची अर्थव्यवस्था के स्तर पर कुल कीमतों का योग कुल सामाजिक मूल्य के योग के बराबर ही रहता है क्योंकि अर्थव्यवस्था में कुल जितना मूल्य पैदा होता है, कुल मिलाकर उतना ही मूल्य बिक्री के ज़रिए वास्तवीकृत होता है।

इसलिए मालों की कीमत मज़दूरी के बढ़ने की वजह से नहीं बढ़ती और न ही उनके घटने की वजह से घटती है। यदि मज़दूरी बढ़ती है और कुल मूल्य उत्पादन स्थिर होता है या वह मज़दूरी से कम रफ्तार से बढ़ता है तो बस यह होता है कि पूँजीपति वर्ग के मुनाफ़े की दर में गिरावट आती है। इसका उल्टा भी सच है; यानी यदि मज़दूरी घटती है और कुल मूल्य उत्पादन स्थिर रहता है या फिर मज़दूरी के घटने से कम रफ्तार से घटता है, तो मुनाफे की दर बढ़ती है। इन बातों को आँकड़ों से सिद्ध किया जा सकता है कि वस्तुओं की कीमतों के बढ़ने, यानी महँगाई के बढ़ने में मज़दूरी में होने वाली बढ़ोत्तरी का कोई योगदान नहीं होता है। उल्टे मज़दूर वर्ग द्वारा मज़दूरी को बढ़ाने की माँग पहले से बढ़ी महँगाई की प्रतिक्रिया होती है, न कि बढ़ती महँगाई बढ़ी हुई मज़दूरी की प्रतिक्रिया। कुछ "यथार्थवादी" मूर्खों का ऐसा मानना है कि पूँजीपति वर्ग की समूची लागत और कुछ नहीं बल्कि मज़दूरी है और यह कि बढ़ती महँगाई में कम ही सही मगर बढ़ती मज़दूरी की भी भूमिका है! यह मूर्खों का एक गिरोह है जो मार्क्सवाद के नाम पर मज़दूर वर्ग में मूर्खतापूर्ण बातें फैलाने की अपनी परियोजना में लगा हुआ है और 'यथार्थ' नामक पत्रिका निकालता है।

दूसरी ग़लत धारणा यह है कि मौजूदा दौर में महँगाई के लिए केवल इजारेदार पूँजीपति वर्ग द्वारा इजारेदार कीमत द्वारा वसूला जाने वाला इजारेदार लगान जिम्मेदार है। यह भी भयंकर मूर्खतापूर्ण और नुकसानदेह सोच है जो कि बड़े इजारेदार पूँजीपतियों को छोड़कर बाकी पूँजीपतियों से मज़दूर वर्ग का मोर्चा बनाने की वर्ग सहयोगवादी नतीजे पर पहुँचती है और मज़दूर वर्ग की स्वतन्त्र राजनीति को भयंकर नुकसान पहुँचाती है। पहले समझ लेते हैं कि इजारेदार पूँजीपति कौन होता है। इजारेदार पूँजीपति वह होता है जिसका अपने निवेश के क्षेत्र में पूर्ण या लगभग पूर्ण एकाधिकार होता है और इसलिए वह अपने माल की कीमत अपने माल के मूल्य से ऊपर रख सकता है। इसे इजारेदार कीमत कहते हैं। यह इजारेदारी किसी भी वजह से हो सकती है। मसलन, कोई कम्पनी कोई विशेष माल बनाती है जिसकी तकनोलॉजी केवल उसके पास ही है, या किसी खनिज के भण्डार पर यदि किसी पूँजीपति का एकाधिकार हो, या फिर राजनीतिक इजारेदार कीमत के ज़रिए किसी पूँजीपति या पूँजीपति वर्ग के किसी हिस्से को सरकार द्वारा निर्धारित इजारेदार कीमत के कारण इजारेदार लगान प्राप्त होता हो, जैसे कि भारत में पूँजीवादी धनी किसानों-कुलकों को लाभकारी मूल्य यानी एम.एस.पी. की इजारेदार कीमत के ज़रिए मिलने वाला इजारेदार लगान।

इजारेदार कीमत के बारे में भी तमाम तथाकथित मार्क्सवादियों जैसे कि 'यथार्थ' पत्रिका के बौड़म गिरोह की विचित्र समझदारी है। इनको लगता है कि इजारेदार पूँजीपति इजारेदार कीमत के तौर पर कोई भी मनमानी कीमत बाज़ार पर थोप सकता है। यह भयंकर मूर्खतापूर्ण बात है। वजह यह कि इजारेदार पूँजीपति भी इजारेदार कीमत को उस स्तर पर ही रख सकता है, जिस स्तर पर उसके इतने माल बिक सकें कि उसे अतिलाभ (यानी औसत मुनाफे से ऊपर मुनाफा) प्राप्त हो सके। दूसरे शब्दों में, जैसा कि मार्क्स ने बताया था, इजारेदार पूँजीपति भी मालों की कीमत मनमाने तरीके से नहीं रख सकते और यदि कोई रखता है तो बाज़ार उस पूँजीपति की अक्ल जल्द ही ठिकाने लगा देता है और उसे अनुशासित कर देता है! इजारेदार कीमत के लिए ऊपरी सीमा है इजारेदार पूँजीपति के माल के लिए बाज़ार में मौजूद प्रभावी माँग, यानी ऐसी माँग जिसके पीछे क्रय-क्षमता मौजूद है। दूसरे शब्दों में, उस माल को ख़रीदने की औक़ात रखने वाले पर्याप्त ख़रीदार। लेकिन केवल इजारेदार पूँजीपतियों को अकेले मज़दूर वर्ग की तक़लीफ़ों के लिए जिम्मेदार ठहराने वाले मूर्ख "मार्क्सवादी" राजनीतिक अर्थशास्त्र की इन बातों को नहीं समझते हैं और जाने-अनजाने इजारेदार पूँजीपति वर्ग के अतिरिक्त बाकी पूँजीपति वर्ग को दोषमुक्त कर देते हैं। इसका राजनीतिक नतीजा यह होता है कि वे पूँजीपति वर्ग के बाकी हिस्सों जैसे कि धनी व्यापारी, पूँजीवादी कुलक-फार्मर, छोटे पूँजीपतियों आदि के साथ मज़दूर वर्ग की दोस्ती और मोर्चे की बात करने लगते हैं। यह एक भयंकर सर्वहारा वर्ग विरोधी पूँजीवादी राजनीतिक लाइन है, जिसको बेनक़ाब करना और उसे नष्ट करना मज़दूर वर्ग की क्रान्तिकारी ताक़तों का फ़र्ज है।

बहरहाल, जैसा कि हम आगे इस लेख में देखेंगे, मौजूदा दौर में, इजारेदार पूँजीपतियों द्वारा इजारेदार कीमतों के ज़रिए वसूला जाने वाला इजारेदार लगान महँगाई का आधारभूत कारण नहीं है। वजह यह कि जिन भी मालों की कीमतों में हम सबसे ज़्यादा महँगाई देख रहे हैं, उनके उत्पादन के क्षेत्र में ऐसा एकाधिकार मौजूद ही नहीं है कि कोई इजारेदार पूँजीपति इजारेदार कीमत को बाज़ार पर थोप सके। हुआ यह है कि कोविड लॉकडाउन और उसके बाद यूक्रेन युद्ध के कारण दुनिया भर में लगभग सभी बुनियादी मालों व सेवाओं की आपूर्ति श्रृंखला के अस्त-व्यस्त और भंग होने के कारण महज़ इजारेदार पूँजीपति वर्ग के पास ही नहीं, बल्कि आम तौर पर समूचे पूँजीपति वर्ग के पास मालों और सेवाओं पर ऊँची कीमतें वसूलने की क्षमता आ गयी है जो कि सीधे तौर पर पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की अराजकता, युद्ध और मुनाफाखोरी के कारण माँग-आपूर्ति के समीकरण में पैदा हुए भारी असन्तुलन का ही परिणाम है।

संक्षेप में, **मज़दूरी का बढ़ना दामों के बढ़ने का कारण नहीं है और न ही महज़ इजारेदार पूँजीपति वर्ग महँगाई का अकेले जिम्मेदार है, बल्कि समूचा पूँजीपति वर्ग ही मौजूदा आपदा को अवसर में बदलने में लगा है और आपूर्ति श्रृंखलाओं के टूटने और माँग-आपूर्ति के समीकरण में आपूर्ति की तुलना में माँग की सापेक्षिक बढ़ोत्तरी के कारण बढ़ी हुई कीमतों का लाभ उठा रहा है, जमाखोरी करके कीमतों को बढ़ा रहा है, सट्टेबाज़ी कर रहा है और समूचे मेहनतकश वर्ग को लूटने में लगा हुआ है।**

मौजूदा दौर में अभूतपूर्व रूप से महँगाई के बढ़ने की इन ग़लत व्याख्याओं के खण्डन के बाद अब हम सकारात्मक तौर पर समझते हैं कि महँगाई के मौजूदा दौर में सारे रिकॉर्ड ध्वस्त करने के पीछे प्रमुख आधारभूत कारण क्या हैं।

महँगाई की वर्तमान लहर के पीछे मूलतः निम्न प्रमुख मूलभूत कारण मौजूद हैं:

पहला है पिछले डेढ़ दशकों से मुनाफे की गिरती औसत दर का संकट जिससे विश्व पूँजीवादी व्यवस्था लाख दावों के बावजूद उभरती नज़र नहीं आ रही है। कोविड महामारी और उसके कारण थोपे गये कुप्रबन्धित लॉकडाउन के पहले से ही भारत समेत दुनिया की सभी बड़ी अर्थव्यवस्थाएँ मुनाफे की गिरती औसत दर के संकट से जूझ रहीं थीं। मुनाफ़े की गिरती औसत दर का संकट पूँजीपति वर्ग की ही मुनाफ़े की अन्धी हवस से पैदा होता

(पेज 11 पर जारी)

गहराते पूँजीवादी आर्थिक संकट के दौर में समूचे पूँजीपति वर्ग द्वारा आपदा को अवसर में बदलकर जारी लूट और मुनाफ़ाख़ोरी

(पेज 10 से आगे)

है। पूँजीपति वर्ग आपसी प्रतिस्पर्द्धा में भी लगा होता है और मज़दूर वर्ग से नये मूल्य में अपने यानी मुनाफे के हिस्से को बढ़ाने की होड़ में भी लगा होता है।

पूँजीपतियों की आपसी प्रतिस्पर्द्धा होती है बाज़ार के बड़े से बड़े हिस्से पर कब्ज़ा करना। जो पूँजीपति अपनी लागत को न्यूनातिन्यून करके अपनी कीमतों को ज़्यादा प्रतिस्पर्द्धी बना सकता है, वही अपने प्रतिद्वन्द्वियों को प्रतिस्पर्द्धा में पीछे छोड़कर बाज़ार के बड़े हिस्से पर कब्ज़ा कर सकता है और अपने मुनाफे को बढ़ा सकता है। इसके लिए पूँजीपति वर्ग श्रम की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए उन्नत से उन्नत तकनोलॉजी व मशीनें लगाता है ताकि माल के उत्पादन की प्रति इकाई लागत को घटाया जा सके। जो पूँजीपति अन्य पूँजीपतियों को इसमें पीछे छोड़ता है, वह तात्कालिक तौर पर अपने माल को अन्य पूँजीपतियों की औसत लागत से कम लागत पर पैदा करता है और उनके औसत दाम से कुछ कम दाम पर बेच सकता है। ऐसे में, उसे तात्कालिक तौर पर एक बेशी मुनाफ़ा मिलता है क्योंकि बाज़ार कीमतें उत्पादन की औसत स्थितियों से तय होती हैं, जबकि इस पूँजीपति की उत्पादन की स्थितियाँ बेहतर होती हैं और इसलिए लागत अन्य पूँजीपतियों से कम होती है। जो पूँजीपति प्रतिस्पर्द्धा में पिछड़ते हैं, तबाह न होने की सूरत में, कालान्तर में वे भी उन्नत तकनोलॉजी व मशीनें लगाते हैं और अपनी लागत को कम करते हैं। अन्ततः, तकनोलॉजी के मामले में पैदा हुआ अन्तर समाप्त हो जाता है और पहले आगे निकलने वाले पूँजीपति का बेशी मुनाफ़ा भी समाप्त हो जाता है। प्रतिस्पर्द्धा की यह पूरी प्रक्रिया समूची पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में सतत् जारी रहती है। लेकिन मुनाफे को अधिकतम बनाने की अलग-अलग पूँजीपतियों की यह प्रतिस्पर्द्धा ही अन्त में समूची पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की मुनाफे की औसत दर को गिराती है। कारण यह कि नया मूल्य और बेशी मूल्य (जो कि पूँजीपति वर्ग के मुनाफे का स्रोत होता है) केवल जीवित श्रम से ही पैदा होता है। मशीनें, कच्चा माल, इमारतें आदि नया मूल्य नहीं पैदा करतीं। वे केवल अपना मूल्य माल के मूल्य में स्थानान्तरित करती हैं। जब समूची अर्थव्यवस्था में पूँजीपति वर्ग की आपसी प्रतिस्पर्द्धा के कारण जीवित श्रम पर पूँजी निवेश सापेक्षिक तौर पर मृत श्रम यानी मशीनों, कच्चे माल आदि पर निवेश के मुकाबले कम होता है, तो मुनाफे की औसत दर में अन्ततः गिरावट आती है। यही नियमित अन्तरालों पर बार-बार आने वाले पूँजीवादी संकट का मूल कारण होता है।

इसके अलावा, समूचा पूँजीपति वर्ग मज़दूर वर्ग से भी प्रतिस्पर्द्धा में लगा होता है। यह प्रतिस्पर्द्धा होती है नये मूल्य में अपने हिस्से को बढ़ाने की। मशीनों, कच्चे माल आदि द्वारा पहले से उत्पादित मूल्य बस माल में स्थानान्तरित होते हैं, जबकि जीवित श्रम ख़र्च होने की प्रक्रिया में यानी मज़दूर उत्पादन करने की प्रक्रिया में अपनी श्रमशक्ति के मूल्य बराबर मूल्य पैदा करने के अलावा पूँजीपति के लिए बेशी मूल्य भी पैदा करते हैं। इसलिए नये उत्पादित मूल्य के दो ही हिस्से होते हैं: मज़दूरी और मुनाफ़ा। यदि मज़दूरी बढ़ती है, तो अन्य स्थितियों के समान रहने पर, मुनाफ़ा घटता है और यदि मुनाफ़ा बढ़ता है, तो अन्य स्थितियों के समान रहने पर, मज़दूरी घटती है। मज़दूर अपनी मज़दूरी को बढ़ाने के लिए संघर्ष करते हैं। पूँजीपति वर्ग उनकी मोलभाव की क्षमता को कम करने के लिए उन पर निर्भरता को घटाने का प्रयास करता है और उन्नत मशीनें व तकनोलॉजी लगाकर उनकी संख्या को सापेक्षिक तौर पर कम करता है। यानी प्रति यंत्र श्रमिक संख्या को घटाता है। इसके कारण भी उत्पादन की प्रक्रिया में जीवित श्रम सापेक्षतः कम होता जाता है और मृत श्रम पर निवेश बढ़ता जाता है, जो कि उन्हीं कारणों से मुनाफे की औसत दर को अन्ततः गिराता है, जिनका हमने ऊपर जिक्र किया है।

जब मुनाफे की औसत दर गिरती है, तो पूँजीपति वर्ग द्वारा निवेश की दर भी कम होती है क्योंकि पूँजीपति समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए उत्पादन में निवेश नहीं करता है, बल्कि मुनाफे के लिए करता है। ऐसे में पूँजीपति वर्ग उत्पादन में निवेश करने की बजाय अपने पूँजी के आधिक्य को सट्टेबाज़ी और शेयर बाज़ार में खपाता है। निवेश की दर कम होने के साथ छँटनी होती है, नयी भर्तियाँ बेहद कम हो जाती हैं और नतीजतन रोज़गार की दर में कमी आती है। रोज़गार की दर में कमी आने के कारण मज़दूरों की रिज़र्व सेना मज़दूरों की सक्रिय सेना की तुलना में बढ़ती है और जैसे-जैसे श्रम की माँग के सापेक्ष श्रम की आपूर्ति बढ़ती है वैसे-वैसे औसत मज़दूरी में कमी आती है। औसत मज़दूरी में कमी आने के साथ-साथ, संकट के दौर में निवेश में कमी के साथ तमाम मालों व सेवाओं की आपूर्ति भी माँग की तुलना में घट सकती है। नतीजतन, उनकी बाज़ार कीमतों में बढ़ोत्तरी आ सकती है। इतना स्पष्ट है कि संकट के कारण मज़दूरों की वास्तविक मज़दूरी में कमी आती है और उनके लिए महँगाई की दर में बढ़ोत्तरी होती है।

मौजूदा दौर में **कमरतोड़ महँगाई का दूसरा कारण, जिसने पहले से मुनाफे की गिरती औसत दर का संकट झेल रही पूँजीवादी अर्थव्यवस्था को मन्दी के भँवर में और बुरी तरह से फँसा दिया, वह था 2019 में कोविड महामारी और उसके बाद दुनिया के अधिकांश देशों में पूँजीपति वर्ग द्वारा थोपे गये अनियोजित किस्म के लॉकडाउन। इन लॉकडाउनों ने पूरी दुनिया में पूँजीवादी उत्पादन और सर्कुलेशन की व्यवस्था को बुरी तरह से प्रभावित किया। इसके कारण आपूर्ति श्रृंखलाएँ लगभग सभी क्षेत्रों में ही बाधित हुईं। इसके कारण बाज़ार में अधिकांश वस्तुओं और सेवाओं की माँग और आपूर्ति में एक भारी असन्तुलन पैदा हुआ जिसके कारण उनकी कीमतें बढ़ने लगीं। लॉकडाउन के खुलने के साथ अचानक माँग में और भी वृद्धि आयी, जबकि उत्पादन और सर्कुलेशन की प्रक्रिया अभी सुचारू रूप से गति नहीं पकड़ पायी थी। खाद्य तेलों की कीमतों में पिछले वर्ष आया ज़बर्दस्त उछाल और उसमें अब तक बनी हुई तेज़ी के पीछे मूल कारण यही था।** चीन की अर्थव्यवस्था के लॉकडाउन के खुलने के बाद वनस्पति तेलों की वैश्विक माँग में भारी कमी आयी थी, जबकि विश्व भर में वनस्पति तेलों के प्रमुख उत्पादक देशों में उत्पादन अभी गति नहीं पकड़ पाया था। नतीजतन, आपूर्ति माँग के सापेक्ष काफी कम हो गयी और वैश्विक बाज़ार में इसकी कीमतों में उछाल आया। भारत में इनकी कीमतों में और भी ज़्यादा बढ़ोत्तरी होने का एक कारण यह था कि भारत के तिलहन उत्पादक धनी किसानों व कुलकों तथा वनस्पति तेल उत्पादक पूँजीपतियों के दबाव के कारण वनस्पति तेल के आयात पर भारत सरकार ने 35 से 40 प्रतिशत तक का आयात शुल्क लगा रखा था, जिसे सरकार ने अभी हाल ही में कम किया है। ऊपर से भारत अपने खाद्य तेल उपभोग के 60 प्रतिशत से भी ज़्यादा के लिए आयात पर निर्भर है। नतीजतन, विश्व बाज़ार में कीमतों में पूँजीवादी व्यवस्था की अराजकता और पूँजीपति वर्ग की मुनाफ़ाखोरी के कारण आये उछाल का असर भारत में खाद्य तेलों की कीमत पर काफी ज़ोरदार तरीके से पड़ा। इसी प्रकार अन्य कई बुनियादी आवश्यक उत्पादों की कीमतों में वृद्धि का एक तात्कालिक कारण कोविड महामारी के पूरे दौर में आपूर्ति श्रृंखलाओं का टूटना था। ठीक इसी दौर में पूँजीपतियों ने मालों की कीमत को अधिक बढ़ाने का काम किया क्योंकि बढ़ी सापेक्षिक माँग के कारण उनके पास यह क्षमता थी कि वे अपने मालों पर ऊँची कीमतें वसूल सकते थे।

यहाँ दो बातें ग़ौर करने लायक हैं। पहला यह कि यह काम केवल बड़े इजारेदार पूँजीपति वर्ग ने नहीं किया बल्कि पूँजीवादी कुलकों-फार्मरों, व्यापारियों व बिचौलियों समेत सभी पूँजीपतियों ने किया। पूँजीपति इसी प्रकार आपदा को अवसर में बदलते हैं। दूसरा यह कि महँगाई का आधारभूत कारण इजारेदार कीमतें नहीं थीं, बल्कि सापेक्षिक माँग में अनपेक्षित बढ़ोत्तरी के कारण कीमतों में आया उछाल था। यह प्रक्रिया चीन में हाल ही में लगे दूसरे लॉकडाउन के दौर तक जारी रही है और अभी भी जारी है।

तीसरा कारण, जिसने बहुत से बुनियादी मालों की आपूर्ति श्रृंखलाओं को और भी ज़्यादा बाधित किया वह है रूस-यूक्रेन युद्ध। रूस तेल व प्राकृतिक गैस की आपूर्ति करने वाला एक प्रमुख देश है। यूरोप के अधिकांश देश अपनी ऊर्जा-सम्बन्धी आवश्यकताओं के लिए रूस से आपूर्ति पर निर्भर करते हैं। रूस से आपूर्ति के बाधित होने के कारण विश्व बाज़ार में तेल व प्राकृतिक गैस की कीमतों में उछाल आया है। तेल व प्राकृतिक गैस की कीमतों में उछाल का अर्थ है सभी मालों की कीमतों में उछाल क्योंकि ये उत्पाद कई अन्य उत्पादों के उत्पादन में कच्चे माल के रूप में शामिल होते हैं और साथ ही परिवहन की पूरी व्यवस्था इन पर निर्भर करती है। लिहाज़ा हर वस्तु के परिवहन की लागत में भी भारी बढ़ोत्तरी हुई जिसके कारण सभी मालों व सेवाओं की कीमतों में बढ़ोत्तरी हुई है। इसके अलावा, रूस और यूक्रेन मिलकर दुनिया भर में गेहूँ की आपूर्ति के बड़े हिस्से के लिए उत्तरदायी हैं। यूक्रेन सूरमुजखी और मक्के का भी भारी पैमाने पर निर्यात करता है। युद्ध ने विश्व बाज़ार में इन खाद्य मालों की आपूर्ति में भी भारी कमी लायी जिसके कारण इन बुनियादी मालों की कीमतों में भी भारी उछाल आया है। इसके कारण, समूचा पूँजीपति वर्ग ही तमाम देशों में इसका फ़ायदा उठा रहा है। भारत में भी गेहूँ उत्पादन करने वाले पूँजीवादी कुलकों-फार्मरों ने लाभकारी मूल्य पर गेहूँ सरकारी मण्डी में बेचने की बजाय खुले बाज़ार में 30 से 40 प्रतिशत ऊपर कीमतों पर बेचा। वहीं व्यापारियों व बिचौलियों ने ऊँची कीमतों पर निर्यात की उम्मीद में गेहूँ की बड़े पैमाने पर जमाखोरी की। इस साल गेहूँ के उत्पादन में भी गर्मी की भीषण लहर के कारण कमी आयी और वह अनुमान से कम रहा। पहले मोदी ने दुनिया के अन्य पूँजीवादी देशों को आश्वासन दिया कि रूस और यूक्रेन से गेहूँ की आपूर्ति में जो कमी आयी है, उसे "विश्व गुरू" भारत पूरा करेगा! लेकिन जब गेहूँ के उत्पादन में कमी आयी, सरकारी ख़रीद में कमी आयी और देश में गेहूँ व आटे के दाम आसमान छूने के कारण सामाजिक असन्तोष पैदा हुआ, तो "विश्व गुरू" की हवा निकल गयी! इसके बाद मोदी द्वारा देश में गेहूँ की कमी का ख़तरा पैदा होने पर गेहूँ के निर्यात पर रोक लगाने की नौटंकी की गयी। लेकिन इसके बावजूद ये व्यापारी और बिचौलिये अभी भी गेहूँ की जमाखोरी करके बैठे हैं और घरेलू

(पेज 12 पर जारी)

बढ़ती महँगाई का असली कारण

(पेज 11 से आगे)

बाज़ार में कीमतों को ऊँचा करने में लगे हुए हैं। सरकारी ख़रीद कम होने के कारण सार्वजनिक वितरण प्रणाली के ज़रिए गेहूँ के वितरण में भी कमी आयी है और नतीजतन गेहूँ और आटे की कीमत घरेलू बाज़ार में भी काफ़ी तेज़ी से बढ़ी है। खाद्यान्न के व्यापार व संसाधन में लगे बड़े पूँजीपति भी इसका पूरा फ़ायदा उठाने में लगे हुए हैं। गेहूँ व अन्य खाद्यान्न समेत सब्जियों व खाद्य तेल की कीमतों में बढ़ोत्तरी की मार सीधे सबसे ग़रीब मेहनतकश आबादी पर पड़ रही है। पूँजीपति वर्ग के लिए भी एक स्तर तक मुद्रास्फीति का बढ़ना अच्छा होता है। लेकिन जब यह एक सीमा से ऊपर जाती है, तो यह मज़दूरी को बढ़ाने का दबाव भी पैदा करता है जो कि उनके मुनाफे की औसत दर में गिरावट ला सकता है। यही कारण है कि मोदी सरकार ने गेहूँ के निर्यात पर पाबन्दी लगा दी ताकि गेहूँ की कीमतों पर नियन्त्रण पाया जा सके। साथ ही, वनस्पति तेलों पर लगने वाले आयात शुल्क में भी कमी की गयी है ताकि वनस्पति तेलों का सस्ता आयात किया जाये क्योंकि भारत अपनी खाद्य तेल आवश्यकताओं के 60 प्रतिशत से भी ज़्यादा हिस्से के लिए आयात पर निर्भर है। लेकिन फिलहाल मोदी सरकार के ये कदम कामयाब नहीं हो रहे हैं क्योंकि पूँजीपति वर्ग की मुनाफ़ाखोरी हमेशा पूँजीवादी सरकार के नियन्त्रण में नहीं रहती और इसके अलावा स्वयं पूँजीपति वर्ग बाज़ार को नियन्त्रित नहीं करता है बल्कि बाज़ार की अपनी एक गति होती है जो पूँजीपति वर्ग को नियन्त्रित करती है।

महँगाई का भारत में चौथा और कुछ मायने में सबसे अहम कारण पेट्रोलियम उत्पादों पर लगने वाले भारी कर और शुल्क हैं। जनता को एक लीटर पेट्रोल व डीज़ल पर पिछले एक वर्ष में 27 से लेकर 32 रुपये तक टैक्स देना पड़ा है। यानी पेट्रोल व डीज़ल की कीमतों पर 30 से 40 प्रतिशत जनता केवल टैक्स के रूप में पूँजीवादी सरकार को चुकाती है। दिसम्बर 2021 के आँकड़े के अनुसार, भारत सरकार ने 2018 से 2021 के बीच तीन वित्तीय वर्षों में इन टैक्सों के ज़रिए रु. 8 लाख करोड़ की भारी कमाई की। पूँजीवादी सरकार व नेताशाही द्वारा इस मुनाफ़ाखोरी के ज़रिए देश की जनता की जेब पर भारी डाका डाला जाता है। यह देश के आर्थिक अधिशेष से सरकार द्वारा निचोड़ा जाने वाला कर है जिसका बोझ सीधे सबसे ग़रीब जनता पर पड़ता है। **इसके कारण, देश में सभी वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन की लागत में बढ़ोत्तरी होती है और इस बढ़ोत्तरी को पूँजीपति अपनी जेब से नहीं चुकाते हैं बल्कि अपने माल की कीमत में स्थानान्तरित करते हैं। नतीजतन, देश में आम तौर पर महँगाई का सबसे प्रमुख कारण पेट्रोलियम उत्पादों पर वसूला जा रहा भारी कर है।** अभी हाल ही में मोदी सरकार ने पेट्रोल व डीज़ल के दामों में करीब 10 रुपये की कटौती की है। इसका एक बुनियादी आर्थिक कारण यह है कि एक सीमा से ज़्यादा मुद्रास्फीति पूँजीपति वर्ग के लिए भी अच्छी नहीं होती है, जिसकी व्याख्या हम ऊपर कर चुके हैं। लेकिन तात्कालिक तौर पर इसका प्रमुख कारण है गुजरात और हिमाचल प्रदेश और बाद में कर्नाटक जैसे राज्यों में करीब आ रहे विधानसभा चुनाव। इन दोनों आर्थिक व राजनीतिक कारणों से मोदी सरकार ने पेट्रोल व डीज़ल के दामों में कटौती की है। लेकिन इसकी वजह से महँगाई में जो कमी आती है, पूँजीपति वर्ग उसका भी इस्तेमाल मज़दूर वर्ग की मज़दूरी को कम करने के लिए करता है।

इसके अलावा, पूँजीवादी अर्थशास्त्रियों का एक स्कूल मुद्रा की आपूर्ति को महँगाई के बढ़ने-घटने का प्रमुख कारण मानता है। इस स्कूल को मॉनिटरिस्ट या मौद्रिकतावादी स्कूल कहा जाता है। मूलत: उसका मानना है कि मुद्रा की आपूर्ति बढ़ने पर महँगाई बढ़ती है क्योंकि तब मुद्रा का अवमूल्यन हो जाता है, जबकि मुद्रा की आपूर्ति को घटाने पर महँगाई कम होती है क्योंकि मुद्रा का मूल्य बढ़ता है। अधिकांश पूँजीवादी देशों के केन्द्रीय सरकारी बैंक इस मूर्खतापूर्ण अवधारणा पर अमल करते हैं। भारतीय रिज़र्व बैंक ने भी हाल ही में ब्याज़ दर बढ़ाकर अर्थव्यवस्था में तरलता यानी मुद्रा की मात्रा को नियंत्रित करने का रास्ता अख्तियार किया है। लेकिन इतिहास गवाह है कि मुद्रा की आपूर्ति अन्तत: वास्तविक उत्पादक अर्थव्यवस्था द्वारा नियंत्रित होती है न कि वास्तविक उत्पादक अर्थव्यवस्था मुद्रा की आपूर्ति से निर्धारित होती है। 2008-09 में जब आर्थिक संकट के कारण दुनिया की प्रमुख अर्थव्यवस्थाओं में तरलता की कमी आयी थी तो स्टिम्युलस पैकेज देने के नाम पर अधिकांश देशों में केन्द्रीय बैंकों ने बड़े पैमाने पर मुद्रा बाज़ार में डाली थी। लेकिन इसके कारण आम तौर पर महँगाई में कोई बढ़ोत्तरी नहीं हुई थी, उल्टे मुद्रास्फीति की दर में अमेरिका और यूरोप के प्रमुख पूँजीवादी देशों में कमी आयी थी। केवल स्टॉक बाज़ार में स्टॉकों की कीमत बढ़ी थी और अचल सम्पत्ति यानी रियल एस्टेट में कीमतों में उछाल आया था क्योंकि यह सारी अतिरिक्त मुद्रा सट्टेबाज़ी में गयी थी न कि उत्पादक अर्थव्यवस्था में। कागज़ी नोटों के रूप में मुद्रा की आपूर्ति बढ़ने या घटने का कीमतों पर केवल तात्कालिक तौर पर ही कुछ प्रभाव पड़ सकता है। आखिरकार यह वास्तविक उत्पादक अर्थव्यवस्था की स्थिति और गति होती है जो कि मालों की कीमतों, यानी आम तौर पर महँगाई के स्तर का निर्धारण करती है। भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा मुद्रा की आपूर्ति को नियंत्रित करने का भी बस इतना ही असर पड़ेगा कि पूँजी बाज़ार में ऋण की कीमत बढ़ेगी, जो कि निवेश की दर में और भी कमी लायेगी, बेरोज़गारी को और बढ़ाएगी, कुल घरेलू माँग में कमी आने के साथ अर्थव्यवस्था संकट के भँवर में और भी बुरी तरह से उलझेगी।

इसी प्रकार पूँजीवाद को पूँजीवाद से बचाने के प्रयासों में लगा जॉन मेनॉर्ड कींस के शिष्यों का भी एक स्कूल है जिसके अनुसार महँगाई बढ़ने का कारण रोज़गार की दर ऊँची होना है, जो कि औसत मज़दूरी को बढ़ा देता है और इस प्रकार लागत को बढ़ाकर दामों को बढ़ा देता है! हम पहले ही देख चुके हैं कि इस सिद्धान्त का सच्चाई से कोई रिश्ता नहीं है। 1970 के दशक में शुरू हुई मन्दी के दौरान भी हमने देखा है और इक्कीसवीं सदी की पहली महामन्दी के पूरे दौर में भी हम देख रहे हैं कि महँगाई की ऊँची दरें रोज़गार व औसत मज़दूरी की ऊँची दरों के कारण नहीं पैदा हुई हैं, उल्टे महँगाई की ऊँची दरों के साथ हम अर्थव्यवस्था के ठहराव, बेरोज़गारी और घटती औसत मज़दूरी दर के साक्षी बन रहे हैं। जैसा कि मार्क्स ने बताया था, अन्य कारकों के समान रहने पर, ऊँची मज़दूरी केवल निम्न मुनाफ़े की दर का कारण बनती है, न कि दामों के बढ़ने का। इस बात को आर्थिक आँकड़ों से सिद्ध किया जा सकता है। कींसवादियों और मौद्रिकतावादियों की इन ग़लत व्याख्याओं का वर्गीय प्रकार्य है बेरोज़गारी और महँगाई के लिए पूँजीवाद को दोषमुक्त किया जाय और इसका बोझ मज़दूर वर्ग या मौद्रिक नीति पर डालकर पूँजीवादी व्यवस्था की अराजकता, मुनाफ़ाखोरी और मानवद्रोही चरित्र को छिपाया जाय। अफ़सोस और विडम्बना की बात है कि कई तथाकथित मार्क्सवादी भी महँगाई और बेरोज़गारी की इन छद्म व्याख्याओं से प्रभावित हो जाते हैं और उन्हें मार्क्सवादी व्याख्याओं के रूप में पेश करते हैं।

ऊपर हमने जिन चार कारणों का जिक्र किया है वे महँगाई में मौजूदा दौर में आयी ज़बर्दस्त बढ़ोत्तरी के लिए मुख्यत: और मूलत: जिम्मेदार हैं। ये पूँजीवादी व्यवस्था की देन है न कि कोई प्राकृतिक आपदा। पूँजीवादी व्यवस्था में वस्तुओं का उत्पादन समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नहीं किया जाता। उनका उत्पादन मालों के रूप में होता है और उत्पादन का मकसद होता है मुट्ठी भर पूँजीपतियों और धन्नासेठों का मुनाफ़ा, जिनका उत्पादन के साधनों पर मालिकाना होता है। एक ऐसी व्यवस्था में समाज की आवश्यकताओं का आकलन कर योजनाबद्ध तरीके से श्रम का आबण्टन कर उत्पादन नहीं किया जाता। पूँजीपति वर्ग आपस में अधिक से अधिक मुनाफ़े के लिए प्रतिस्पर्द्धा करता है और सामाजिक तौर पर अराजकतापूर्ण तरीके से सभी मालों का उत्पादन होता है। यह व्यवस्था नियमित अन्तराल पर इसी मुनाफे की हवस के कारण मुनाफे की गिरती औसत दर के संकट की शिकार होती है जिसका ख़ामियाजा भी सबसे ज़्यादा मेहनतकश आबादी को ही उठाना पड़ता है। निश्चित तौर पर, ऐसे संकट के दौर में छोटे और मँझोले पूँजीपति तबाह होते हैं, कुछ बड़े पूँजीपति भी तबाह होते हैं, पूँजी कम से कम हाथों में केन्द्रित होती है और इसी की प्रतिसन्तुलनकारी गति के तौर पर कुछ नये बड़े पूँजीपति भी पैदा होते हैं और पूँजीवादी घरानों के टूटने के कारण भी नये पूँजीपति पैदा होते हैं। नतीजतन, पूँजीवादी व्यवस्था में पूँजी के एकाधिकारीकरण की प्रक्रिया हमेशा एक रुझान के तौर पर मौजूद रहती है और वह कभी पूर्ण एकाधिकारीकरण तक नहीं पहुँच सकती है। बिना प्रतिस्पर्द्धा के पूँजीवाद सम्भव ही नहीं है और एकाधिकारीकरण बढ़ने के साथ भी प्रतिस्पर्द्धा समाप्त नहीं होती, बल्कि बड़े पूँजीपतियों के बीच और भी अधिक तीखी और हिंस्र होती जाती है। यही कारण है कि आम तौर पर समूची अर्थव्यवस्था में महँगाई के बढ़ने का कारण मूलत: और मुख्यत: कभी इजारेदार पूँजीपतियों द्वारा इजारेदार कीमतों के ज़रिए लूटा जाने वाला इजारेदार लगान नहीं होता है। इजारेदार लगान के ज़रिए समूची पूँजीवादी व्यवस्था के पैमाने पर केवल दो चीज़ें होती हैं: पहला, अन्य सेक्टरों से इजारेदारी वाले सेक्टरों में मूल्य का स्थानान्तरण और दूसरा, आम मेहनतकश जनता की औसत कमाई में एक सीमा तक कटौती। पूरी अर्थव्यवस्था के पैमाने पर उतना मूल्य ही वास्तवीकृत हो सकता है, जितना कि पैदा होता है। आज के दौर में भी **महँगाई का कारण कुछ इजारेदार पूँजीपतियों द्वारा इजारेदार लगान की वसूली नहीं है बल्कि आर्थिक संकट के दौर में, जो कि कोविड व युद्ध जैसे बाह्य कारणों के चलते और भी गहरा गया है, पूँजीपति वर्ग द्वारा आपदा को अवसर में बदला जाना है। और यह काम केवल बड़े पूँजीपति नहीं कर रहे हैं, बल्कि धनी किसानों-कुलकों, व्यापारियों, आढ़तियों, बिचौलियों जैसे छोटे व मँझोले पूँजीपतियों से लेकर अदानी, अम्बानी आदि जैसे बड़े पूँजीपतियों तक, समूचे पूँजीपति वर्ग द्वारा किया जा रहा है।**

जब संकट के दौर में कुल उत्पादित नये मूल्य में मज़दूरी का हिस्सा बढ़ती बेरोज़गारी, मज़दूर अधिकारों पर हमले और पूँजीपति वर्ग द्वारा वास्तविक मज़दूरी को घटाये जाने के कारण घटता है, तो मुनाफे का हिस्सा जाहिरा तौर पर बढ़ता है। यदि कुल उत्पादित नया मूल्य घट भी रहा हो, यानी उत्पादन में संकट के दौर में कमी भी आ रही हो, तो भी बेरोज़गारी व मज़दूरों की बढ़ती रिजर्व सेना के कारण औसत मज़दूरी में कमी आने की सूरत में मुनाफे का हिस्सा सापेक्षिक तौर पर और निरपेक्ष तौर पर भी बढ़ सकता है। मौजूदा संकट के दौर में यह हुआ भी है। कुल नये उत्पादित मूल्य में (जो कि अभी भी कोविड महामारी के पहले के स्तर से काफी कम है) मज़दूरी के हिस्से में भारी कमी आने के कारण मुनाफे का हिस्सा बढ़ा है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि यह हिस्सा इजारेदार पूँजीपतियों के लिए ही बढ़ा है या फिर यह उनके द्वारा इजारेदार लगान वसूलने के कारण बढ़ा है। इसका सबसे प्रमुख कारण यह है कि मुनाफे की गिरती औसत दर के कारण निवेश की दर में कमी और बेरोज़गारी में बढ़ोत्तरी व मज़दूर वर्ग के अधिकारों पर हमले के फलस्वरूप औसत मज़दूरी में आयी कमी है। इसके साथ, बाह्य कारणों के चलते उत्पादन व आपूर्ति में कमी ने मालों की बाज़ार कीमतों को अभूतपूर्व रूप से बढ़ाया है। लिहाज़ा, कुल उत्पादित नये मूल्य के कोविड पूर्व स्तर से अभी भी पर्याप्त नीचे होने के बावजूद भी मुनाफे का उसमें हिस्सा मज़दूरी की तुलना में बढ़ा है, मज़दूर वर्ग की औसत आय में कमी आयी है और नतीजतन आम मेहनतकश आबादी के लिए महँगाई विशेष तौर पर बढ़ी है। साथ ही, आर्थिक संकट और कोविड व युद्ध के बाह्य झटकों के कारण आपूर्ति श्रृंखलाओं के बाधित होने के कारण भी आम तौर पर सभी मालों की कीमतों में बढ़ोत्तरी आयी है और इसका बोझ भी सबसे ज़्यादा मेहनतकश जनता को उठाना पड़ रहा है, जबकि समूचा पूँजीपति वर्ग इस आपदा को अवसर में तब्दील करने में लगा हुआ है।

यह मौजूदा दौर में महँगाई के अभूतपूर्व रूप से बढ़ने के मूल कारण हैं। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की अराजकता और मुनाफ़ाखोरी के कारण ऐसे दौर पूँजीवादी व्यवस्था में आते ही रहते हैं और हर बार उसका बोझ मज़दूर वर्ग और आम मेहनतकश जनता पर ही पड़ता है। ऐसी व्यवस्था में आप और किसी बात की उम्मीद भी नहीं कर सकते हैं। इस आर्थिक अनिश्चितता और सामाजिक असुरक्षा से समाजवादी व्यवस्था ही मज़दूर वर्ग और आम जनता को निजात दिला सकती है।

श्रीलंका का संकट : नवउदारवादी नीतियों की ख़ूनी जकड़ का विनाशकारी परिणाम

– लता

श्रीलंका की आम जनता अपने सबसे भयंकर दु:स्वप्न से गुज़र रही है। सभी मूलभूत सुविधाओं से एक-एक कर वह वंचित होती जा रही है। वह आज ईंधन, बिजली, रसोई गैस, पेट्रोल की समस्या से जूझते हुए दाने-दाने को मोहताज है। देश की एक बड़ी मेहनतकश आबादी दिन में एक समय भोजन कर रही है। कइयों को वह भी नसीब नहीं है। जीवनरक्षक दवाइयों के अभाव में अस्पतालों में लोग बे-मौत मर रहे हैं। दवाइयों और बिजली के अभाव में ऑपरेशन और अन्य चिकित्सा प्रक्रिया स्थगित करनी पड़ रही है जिससे हज़ारों की मौत हो रही है।

पिछले कुछ वर्षों में एक के बाद एक आत्मघाती नीतियों को अपनाने वाली महिन्दा राजपक्षे की सरकार जनता का क्रोध झेल रही है। प्रधानमंत्री आवास और कई मंत्रियों के आवास को जनता गुस्से में जला चुकी है और राष्ट्रपति गोटाबाया राजपक्षे की इस्तीफ़ा की माँग करती लगातार सड़कों पर प्रदर्शन कर रही है। बिजली, गैस, अनाज, पेट्रोल आदि की माँग करती जनता को कोई उपाय नज़र नहीं आ रहा। यह संकट अभी आने वाले समय में और ग़हरा होने जा रहा है। संयुक्त राष्ट्र और उसके जैसे तमाम अन्य संगठन जो पूँजीवादी विश्व का मानवतावादी मुखौटा हैं मूक दर्शक बने श्रीलंका की जनता को तिल-तिल कर मरता देख रहे हैं लेकिन किसी भी तरह की मदद के लिए कोई आगे नहीं आ रहा। बस कुछ खोख़ले आश्वासनों और नाममात्र के सहयोग के अलावा कहीं से कोई राहत आती नहीं दिख रही है। प्रधानमंत्री महिन्दा राजपक्षे को पद से हटाने के बाद श्रीलंका की जनता राष्ट्रपति गोटाबाया राजपक्षे को भी पद से हटाना चाहती है। ऐसा करने में वह शायद सफल भी हो जाए लेकिन श्रीलंका की जनता के पास राजनीतिक विकल्पहीनता है इसलिए कोई ठोस राजनीतिक व आर्थिक परिवर्तन के आसार नहीं दिखते हैं।

रानिल विक्रमसिंघे के प्रधानमंत्री चुने जाने से यह बात और अधिक पुख़्ता हो जाती है। रानिल विक्रमसिंघे भी उसी सम्भ्रान्त सत्ता वर्ग से आता है जिसने श्रीलंका के मज़दूर-किसानों का शोषण किया है, देशी-विदेशी पूँजी की सेवा पूरी निष्ठा से की है। इनके कार्यकाल में ही देश ने सोलहवाँ अन्तराष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) से कर्ज़ लिया था और यह पहले भी उद्योग, विज्ञान, तकनोलॉजी आदि के मंत्री रह चुके हैं। ऐसे स्थिति में किसी भी प्रकार के जनपक्षधर परिवर्तन की उम्मीद नामुमकिन ही दिख रही है।

पिछले बीस सालों से राजपक्षे परिवार ने देश के तमाम महत्वपूर्ण पदों पर कब्जा जमाया हुआ है। 2010 में श्रीलंका के संविधान के 18वें संशोधन के बाद राष्ट्रपति के हाथों में पहले से बहुत अधिक राजनीतिक और आर्थिक बदलाव की शक्ति दे दी गई थी। अभी भी गोटाबाया राजपक्षे ही राष्ट्रपति हैं। यानी राजपक्षे परिवार का अभी भी श्रीलंका की राजनीति पर नियंत्रण बना हुआ है। एक बार फिर इस परिवार के चले जाने के बाद भी, अगर ऐसी स्थिति पैदा होती है तो, कोई और विकल्प सामने आता नज़र नहीं आ रहा जो कि जनपक्षधर हो और देशी-विदेशी पूँजी के शोषण से मज़दूर और आम मेहनतकश जनता को राहत दे। इस शोषण से मुक्ति तो एक सर्वहारा क्रान्ति के ज़रिए ही हो सकती है, जिसे नेतृत्व देने के लिए आज कोई सर्वहारा वर्ग की पार्टी श्रीलंका में मौजूद नहीं है।

संकट का इतिहास

संकट के कारणों की पड़ताल करते हुए हमारे देश की मीडिया से लेकर विश्व की मीडिया महिन्दा राजपक्षे की कई नीतियों को ज़िम्मेदार बता रही है। साथ ही चीन के कर्ज़ और निर्माण कार्य की शर्तों को इस संकट के महत्वपूर्ण कारणों में गिना जा रहा है। चाय, कॉफी, रबर, मसालों आदि के निर्यात के अलावा मुख्यत: विदेशों से आने वाले आय-प्रेषण (रेमिटेंस) और पर्यटन पर आधारित श्रीलंका की अर्थव्यवस्था लम्बे समये से संकट से गुज़र रही थी जिसे कोरोना काल ने एकदम तबाही के कगार पर ला कर खड़ा कर दिया। महिन्दा राजपक्षे की नीतियों और कोरोना काल के तात्कालिक कारणों ने निश्चित ही आग में घी डालने का काम किया है। लेकिन वर्तमान परिस्थिति लम्बे समय से चले आ रहे संकट की मुखर अभिव्यक्ति है। नवउदारवादी नीतियों के कुचक्र और आईएमएफ (अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोश) व विश्व बैंक के खूनी पंजों की छाप हमें श्रीलंका की राजनीति और अर्थव्यवस्था पर साफ़ नज़र आएँगे। लेकिन मीडिया चीन के निर्माण कार्यों और कर्ज़ को वर्तमान संकट के प्रमुख करणों की तरह दर्शा रही है। निश्चित ही चीन द्वारा दिये गये कर्ज़ या निर्माण परियोजनाओं का उद्देश्य श्रीलंका की जनता को संकट से उबारने या उनकी आर्थिक मदद है, ऐसा नहीं है। अपने विश्व स्तर के व्यापक 'बेल्ट एण्ड रोड' परियोजना के हिस्से के तौर पर ने श्रीलंका में निर्माण परियोजनाओं की शुरुआत की थी। यह महत्वकांक्षी परियोजना विश्व राजनीति में चीन-रूस के बढ़ते दख़ल और अपने प्रभाव क्षेत्र को बढ़ाने की नीति का हिस्सा है। चीन की नीतियों का भी कोई मानवीय पहलू नहीं है, वैसे ही जैसे विश्वबैंक और आईएमएफ का कभी नहीं था। चीन भी चीनी कर्ज़ तले दबे होने की स्थिति में श्रीलंका के साथ उन्हीं नीतियों का अमल करेगा जो आईएमएफ या कोई भी साम्राज्यवादी देश करता, यानी नवउदारवादी नीतियों को धड़ल्ले से लागू करना। लेकिन आज की स्थिति के लिए चीन को मुख्यत: दोषी ठहराने के पीछे पश्चिम की मीडिया का उद्देश्य है पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों, विश्व बैंक और आइएमएफ की नीतियों पर पर्दा डालना जो श्रीलंका की वर्तमान संकट के लिए मुख्य तौर पर जिम्मेदार हैं।

श्रीलंका दक्षिण एशिया में नवउदारवादी नीतियों की पहली प्रयोग भूमि बना। आईएमएफ के कर्ज़ तले श्रीलंका 1965-66 से दबा चला आ रहा था। लेकिन 1970 और 1980 के दशक में तीन प्रमुख कर्ज़ की शर्तों के साथ देश में नवउदारवादी नीतियों की शुरुआत हुई। जैसा कि हमने ऊपर जिक्र किया है श्रीलंका की अर्थव्यवस्था प्राथमिक उपभोक्ता माल जैसे कॉफी, चाय, रबर, मसालों आदि के निर्यात पर बड़े तौर पर निर्भर है। 1950 के दशक में प्राथमिक माल की कीमतों में बढ़ोत्तरी के कारण श्रीलंका के पास व्यापार अधिशेष व विदेशी मुद्रा भण्डार था। यानी निर्यात से आने वाला राजस्व आयात पर हुए ख़र्च की तुलना में अधिक था। लेकिन 1960 के पूर्वार्ध में विश्व बाज़ार में प्राथमिक माल की कीमतों में गिरावट आने लगी जिसका सीधा असर श्रीलंका की अर्थव्यवस्था पर पड़ा। 1965-66 में श्रीलंका भयंकर भुगतान संतुलन के संकट से गुज़र रहा था। यानी देश में आने वाले धन की तुलना में देश से बाहर जाने वाला धन अधिक था। राशन, दूध, चीनी और दवा जैसी बुनियादी चीज़ों पर भी आयात पर निर्भर रहने वाले देश में विदेशी मुद्रा भण्डार कम होना अर्थव्यवस्था के लिए भयंकर स्थिति पैदा कर सकता था। श्रीलंका को ऐसी स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से कर्ज़ लने की नौबत आ गई। कर्ज़ की शर्तों के अनुसार श्रीलंका को अपने राजकोष के घाटे को कम करने, सबसिडी कम करने, सख़्त मुद्रा नीति का पालन करने और देशी-विदेशी पूँजी पर कर कम करने को कहा गया। 1960 के उत्तर्राध में श्रीलंका की मुद्रा का 20 प्रतिशत अवमूल्यन हुआ और दोहरी एक्सचेंज रेट व्यवस्था की शुरुआत हुई। यानी आज के दिन की मुद्रा दर जिसे 'स्पॉट रेट' कहते हैं और भविष्य की किसी तारीख़ की दर जिसे 'फारवर्ड रेट' कहते हैं विनिमय दर इन दोनों पर आधारित होगी यानी दोहरा एक्सचेंज रेट। यहाँ से हम श्रीलंका की अर्थव्यवस्था पर आईएमएफ और विश्व बैंक के बढ़ते दख़ल को देख सकते हैं।

हालाँकि 1970 के पूर्वार्ध में आईएमएफ द्वारा शुरू किये गये इन सुधारों को सिरीमावो भण्डारनायके की सरकार ने अपने कार्यकाल में आंशिक तौर पर ख़त्म करने का प्रयास भी किया था। भण्डारनायके की सरकार ने भूमि सुधारों, उद्योगों के राष्ट्रीकरण और सामाजिक क्षेत्र के निवेश को बढ़ाने का प्रयास किया था। राजकोषीय घाटे को काम करने पर बल देने वाले आईएमएफ और विश्व बैंक भण्डारनायके की नीतियों से नाखुश थे। विदेशी पूँजी के लिए पूँजी संचय की राह में कुछ बाधा पैदा करने वाली इस तरह की नीतियों की आईएमएफ और विश्व बैंक के लिए कोई जगह नहीं है। 1973 के पेट्रोल संकट ने श्रीलंका के विदेशी मुद्रा भण्डार को लगभग खाली कर दिया। औद्योगिक विकास ठप्प पड़ा था, ज़रूरी उपभोक्ता सामग्री (दूध, दाल, चीनी, दवाइयाँ आदि) का आयात मुश्किल हो रहा था और ऐसे में सामाजिक क्षेत्र के निवेश को बनाये रखना भी कठिन हो रहा था। विदेशी वित्तीय संस्थान पहले से ही भण्डारनायके की सरकार की ओर दुश्मनाना रुख़ अपनाए थे। और देशी पूँजीपति वर्ग भी अब मुनाफ़ा कमाने के लिए ज्यादा खुला हाथ और नवउदारवादी नीतियों पर अमल चाहता था। ऐसे में भण्डारनायके की सरकार पर भारी दबाव बनने लगा। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पूँजी के दबाव में 1977 में सरकार गिर गई। जयवर्धने की नई सरकार ने कर्ज़ के बदले नवउदारवादी नीतियों का खुले तौर पर स्वागत किया।

जे.आर. जयवर्धने की के नेतृत्व में संयुक्त राष्ट्रीय पार्टी (यूएनपी) की सरकार 1977 में बनी। आर्थिक संकट से निपटने के लिए जयवर्धने ने तीन बड़े कर्ज़ आईएमएफ से लिये: पहला 1977-78, दूसरा 1979-82 और तीसरा 1983-84। इसके साथ श्रीलंका "मुक्त अर्थव्यवस्था" वाली नवउदारवादी नीतियों के मातहत आ गया। मूलत: उपभोक्ता वस्तुओं के निर्यात पर आधारित अर्थव्यवस्था की निर्भरता विश्व बाज़ार पर सापेक्षत: ज्यादा बनती है। आधारभूत औद्योगिक क्षेत्र के विकसित नहीं होने और विश्व बाज़ार पर बनी निर्भरता अर्थव्यवस्था को बेहद अरक्षित और वैश्विक बाज़ार के उछाल-गिरावट के मातहत कर देती है। विश्व बाज़ार से पैदा अनिश्चितता को सम्भालने के लिए यदि सशक्त औद्योगिक व अवरचनागत ज़मीन नहीं होती हैं तो संकट से निपटने के लिए आईएमएफ और विश्व बैंक या साम्राज्यवादी देशों पर निर्भरता ज्यादा बनती है। ऐसी कमज़ोर अर्थव्यवस्था वाले देशों के पास साम्राज्यवादी पूँजी के समक्ष मोलभाव की क्षमता कम होती है। यही श्रीलंका में भी हुआ। आईएमएफ की शर्तों में उदार विनिमय दर, रुपये के अवमूल्यन, मूल्य नियंत्रण का उन्मूलन, खाद्य सब्सिडी में कटौती, मज़दूरी पर नियंत्रण, सख्त मुद्रा नीति, निजी उद्यमों को प्रोत्साहन और अधिक विदेशी मदद शामिल थे। अफ़्रीका, लातिन अमेरिका या एशिया के जिन देशों में भी नवउदारवादी नीतियों के साथ आईएमएफ और विश्व बैंक की दखल शुरू हुई उसके साथ ही निरंकुश, तानाशाही, दक्षिणपंथी और साम्प्रदायिक राजनीति को हवा दी गई। चाहे लातिन अमेरिका के देशों की बात हो, अफ़्रीका या एशिया, सभी जगह नवउदारवादी नीतियों के आगमन ने विनाशकारी राजनीतिक परिदृश्य का निर्माण किया है।

नवउदारवादी नीतियों ने देश स्तर पर भयंकर आर्थिक ध्रुविकरण को जन्म दिया। ग़रीब-अमीर की खाई लगातार बढ़ती गई है। आर्थिक असंतोष राजनीतिक असंतोष में परिवर्तित न हो जाए इसके लिए दक्षिणपंथी, साम्प्रदायिक राजनीति को हवा दी गई। जैसे भारत में हिन्दू-मुसलमान के बीच सम्प्रदायिक नफ़रत की आग भड़काई गई वैसे ही श्रीलंका में तमिल अल्पसंख्यकों के ख़िलाफ़ नफ़रत और सिंहला अन्धराष्ट्रवाद को हवा दी गयी। बेहद सोची-समझी योजना के तहत तमिल अल्पसंख्यकों के ख़िलाफ़ भेदभाव किया गया और उन पर हमले करवाये गये। इस दौरान ही तमिल ईलम की माँग उठने लगी। वी.प्रभाकरन के नेतृत्व में एक समूह ने सिंहला सैनिकों पर हमला किया। इन जटिल राजनीतिक परिस्थिति में जुलाई 1983 में तमिलों के ख़िलाफ़ नरसंहार की शुरुआत हुई और इसके साथ ही 2009 तक चले गृहयुद्ध की भी शुरुआत हुई।

नवउदारवादी नीतियों का प्रतिरोध करने वाले ट्रेड यूनियनों और वाम आन्दोलनों का भी बड़े स्तर पर दमन किया गया। निरंकुशशाही को और भी अधिक बढ़ावा मिला जब संसद को स्थगित कर राष्ट्रपति शासन लागू किया गया। मज़दूरों की आम हड़तालों का बर्बर दमन हुआ। यहाँ तक कि मज़दूरों के दमन के लिए सेना की अतिरिक्त टुकड़ियों का प्रयोग किया गया और राष्ट्रीय अपातकाल की घोषणा कर दी गई। अगस्त 1980 में जयवर्धने ने मज़दूरों की हड़ताल के बर्बर दमन के बाद राष्ट्रीय संचार के माध्यम से कहा था कि "अभी तो हाथी ने मात्र अपनी सूँड़ झटकी है, पूरी शक्ति का इस्तेमाल भी नहीं हुआ है"। यह मज़दूरों और आम मेहनतकशों की हड़तालों और किसी भी तरह के प्रतिरोध प्रदर्शन के ख़िलाफ़ खुली धमकी थी। हाथी जयवर्धने की पार्टी, यूएनपी (संयुक्त राष्ट्रीय पार्टी) का चुनाव चिन्ह था।

1983 से 2009 तक चले गृह युद्ध ने देश की अर्थव्यस्था को झकझोर कर रख दिया था। इस दौरान सरकारी बजट का भारी हिस्सा रक्षा क्षेत्र की और मोड़ा जाता रहा। इसकी वजह से देश की उत्पादकता में भारी गिरावट आई और राजकोषीय घाटे में बढ़ोतरी हुई। एक बार फिर इतिहास ने अपने आप को दुहराया। 2008 के सबप्राइम संकट के प्रभाव और युद्ध से क्षतविक्षत अर्थव्यवस्था को सम्भालने के लिए और महिन्दा राजपक्षे की सरकार ने आईएमएफ से 260 करोड़ रुपये का कर्ज़ लिया।

2009 से 2012 तक के काल में जीडीपी के विकास दर में उछाल

(पेज 6 पर जारी)

फासीवाद की बुनियादी समझ बनायें और आगे बढ़कर अपनी ज़िम्मेदारी निभायें

फासीवादियों का विरोध करने वाले बहुत से बुद्धिजीवियों और अनेक क्रान्तिकारी संगठनों के बीच भी फासीवाद को लेकर कई तरह के विभ्रम मौजूद हैं। मज़दूर बिगुल के पाठकों से भी अक्सर फासीवाद को लेकर कई तरह के सवाल हमें मिलते रहते हैं। **कविता कृष्णपल्लवी** की यह टिप्पणी यह समझने में मदद करती है कि फासीवाद एक सामाजिक आन्दोलन है जिसने भारतीय समाज में गहरे जड़ें जमा ली हैं। इसके महज़ चुनावों में हराकर परास्त और नेस्तनाबूद नहीं किया जा सकता। इसके विरुद्ध एक लम्बी लड़ाई की तैयारी करनी होगी। हालाँकि इसे मोदी के सत्ता में आने से पहले लिखा गया था लेकिन यह आज और भी प्रासंगिक है। — सम्पादक

(1) फासीवाद सड़ता हुआ पूँजीवाद है (लेनिन)। यह वित्तीय पूँजी के आर्थिक हितों की सर्वाधिक प्रतिक्रियावादी राजनीतिक अभिव्यक्ति होती है।

(2) फासीवाद कई बेमेल तत्वों से बना एक प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन है। बड़े वित्तीय-औद्योगिक पूँजीपतियों के एक हिस्से के अलावा व्यापारी वर्ग और कुलकों का एक हिस्सा भी इसका समर्थन करता है। उच्च मध्यवर्ग का एक हिस्सा भी इसका समर्थन करता है।

(3) फासीवाद पूँजीवादी व्यवस्था में परेशानहाल मध्यवर्ग के पीले-बीमार चेहरे वाले युवाओं को लोकलुभावन नारे देकर और "गढ़े गये" शत्रु के विरुद्ध उन्माद पैदा करके उन्हें अपने साथ गोलबन्द करता है। बेरोज़गार-अर्द्धबेरोज़गार असंगठित युवा मज़दूर, जो विमानवीकरण और लम्पटीकरण के शिकार होते हैं, फासीवाद उनके बीच से अपनी गुण्डा वाहिनियों में भरती करता है।

(4) फासीवाद घोर पुरुषस्वामित्ववादी और स्त्री-विरोधी होता है। शुरू से किया जाने वाला स्त्री-विरोधी मानसिक अनुकूलन फासीवादी कार्यर्ताओं को प्राय: सदाचार के छद्म वेष में मनोरोगी और दमित यौनग्रंथियों का शिकार बना देता है।

(5) फासीवाद एक कैडर-आधारित प्रतिक्रियावादी सामाजिक आन्दोलन होता है, जो समाज में तृणमूल स्तर पर काम करता है। वह हमेशा कई संगठन और मोर्चे बनाकर काम करता है। हर जगह उसकी कई प्रकार की गुण्डावाहिनियाँ होती हैं। बुर्जुआ जनवाद में संसदीय चुनाव लड़ने वाली पार्टी उसका महज़ एक मोर्चा होती है।

(6) फासीवाद हमेशा उग्र अन्धराष्ट्रवादी नारे देता है। वह हमेशा संस्कृति का लबादा ओढ़कर आता है, संस्कृति का मुख्य घटक धर्म या नस्ल को बताता है और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का नारा देता है। इस तरह देश विशेष में बहुसंख्यक धर्म या नस्ल का "राष्ट्रवाद" ही मान्य हो जाता है और धार्मिक या नस्ली अल्पसंख्यक स्वत: "पराये" या "बाहरी" हो जाते हैं। इस धारणा को और अधिक पुष्ट करने के लिए फासीवादी इतिहास को तोड़-मरोड़ते हैं, मिथकों को ऐतिहासिक यथार्थ बताते हैं और ऐतिहासिक यथार्थ का मिथकीकरण करते हैं।

(7) फासीवाद धार्मिक या नस्ली अल्पसंख्यकों को निशाना बनाने के लिए संस्कृति और इतिहास का विकृतिकरण करने के लिए तृणमूल प्रचार के विविध रूपों के साथ शिक्षा का कुशल और व्यवस्थित इस्तेमाल करते हैं। धार्मिक प्रतिष्ठानों का भी वे खूब इस्तेमाल करते हैं।

(8) फासीवादी व्यवस्थित ढंग से सेना-पुलिस-नौकरशाही में अपने लोगों को घुसाते हैं और इनमें पहले से ही मौजूद दक्षिणपंथी विचार के लोगों को चुनकर अपने प्रभाव में लेते हैं।

(9) अपनी पत्र-पत्रिकाओं से भी अधिक फासीवादी मुख्य धारा की बुर्जुआ मीडिया का इस्तेमाल कर लेते हैं। इसके लिए वे मीडिया प्रतिष्ठानों में योजनाबद्ध ढंग से अपने लोग घुसाते हैं और तमाम दक्षिणपंथी बुद्धिजीवियों की शिनाख़्त करके उनका इस्तेमाल करते हैं।

(10) फासीवादी केवल इतिहास का ही विकृतिकरण नहीं करते, आम तौर पर वे अपनी हितपूर्ति के लिए किसी भी मामले में सफ़ेद झूठ को भी सच बनाकर पेश करते हैं। सभी फासीवादी गोयबेल्स के इस सूत्र वाक्य को अपनाते हैं, 'एक झूठ को सौ बार दुहराओ, वह सच लगने लगेगा।'

(11) फासीवादी हमेशा, अंदर-ही-अंदर शुरू से ही, कम्युनिस्टों को अपना मुख्य शत्रु समझते हैं और उचित अवसर मिलते ही चुन-चुनकर उनका सफाया करते हैं, वामपंथी लेखकों-कलाकारों तक को नहीं बख्शते। इतिहास में हमेशा ऐसा ही हुआ है। फासीवादियों को लेकर भ्रम में रहने वाले, नरमी या लापरवाही बरतने वाले कम्युनिस्टों को इतिहास में हमेशा क़ीमत चुकानी पड़ी है। फासीवादियों ने तो सत्ता-सुदृढ़ीकरण के बाद संसदीय कम्युनिस्टों और सामाजिक जनवादियों को भी नहीं बख्शा।

(12) आज के फासीवादी हिटलर की तरह यहूदियों के सफ़ाये के बारे में नहीं सोचते। वे दंगों और राज्य-प्रायोजित नरसंहारों से आतंक पैदा करके धार्मिक अल्पसंख्यकों को ऐसा दोयम दर्ज़े का नागरिक बना देना चाहते हैं, जिनके लिए क़ानून और जनवादी अधिकारों का कोई मतलब ही न रह जाये, वे निकृष्टतम श्रेणी के उजरती ग़ुलाम बन जायें और सस्ती से सस्ती दरों पर उनकी श्रमशक्ति निचोड़ी जा सके। साथ ही मज़दूर वर्ग के भीतर पैदा हुए धार्मिक अलगाव की वजह से मज़दूर आन्दोलन बँटकर कमज़ोर हो जाये और उसे तोड़ना आसान हो जाये।

(13) फासीवादी गुण्डे हर देश में हड़तालों को तोड़ने में अहम भूमिका निभाते रहे हैं। जहाँ भी वे सत्ता में आये, कम्युनिस्टों के सफाये के साथ मज़दूर आन्दोलन का बर्बर दमन किया।

(14) अतीत से सबक लेकर आज का पूँजीपति वर्ग फासीवाद का अपनी हितपूर्ति के लिए "नियंत्रित" इस्तेमाल करना चाहता है, जंज़ीर से बँधे कुत्ते की तरह, पर यह खूँख़्वार कुत्ता जंज़ीर छुड़ा भी सकता है और उतना उत्पात मचा सकता है, जितना पूँजीपति वर्ग की चाहत कत्तई न हो। फासीवाद ही नवउदारवाद की नीतियों को डण्डे के ज़ोर से लागू कर सकता है, अत: संकटग्रस्त पूँजीवाद इस विकल्प को चुनने के बारे में सोच रहा है।

(15) यदि हमारे भीतर थोड़ा भी इतिहास बोध हो तो यह बात भली-भाँति समझ लेनी होगी कि फासीवाद से लड़ने का सवाल चुनावी जीत-हार का सवाल नहीं है। इस धुर प्रतिक्रियावादी सामाजिक-राजनीतिक आन्दोलन का मुक़ाबला केवल एक जुझारू क्रान्तिकारी वाम आन्दोलन ही कर सकता है।

इन बातों से जो साथी सहमत हैं, वे इसका व्यापक प्रचार करें और स्वयं भी फासीवाद-विरोधी मुहिम से सक्रिय भागीदारी के बारे में सोचें।

मसखरा सिंहासन पर बैठा
तरह-तरह के करतब दिखाता है
दरबारी हँसते हैं तालियाँ पीट-पीटकर
और डरे हुए भद्र नागरिक उनका साथ देते हैं।
वे जानते हैं, मसखरा एक हत्यारा है
और दरबार में ख़ून के चहबच्चों के ऊपर
बिछी हुई है लाल कालीन।
मसखरे का सबसे प्रिय शगल है
सड़कों पर युगपुरुष बनकर निकलने का स्वांग रचना
विशाल भव्य मंचों से अच्छे दिनों की घोषणा करना
जिन्हें सुनकर सम्मोहित भीड़ नारे लगाने लगती है
सदगृहस्थ भले लोग डर जाते हैं
सयाने अपनी हिफ़ाज़त की जुगत भिड़ाने लगते हैं
और विवेकवान लोग चिन्तापूर्वक आने वाले दिनों की
तबाहियों के बारे में सोचने लगते हैं।
सदियों पहले जो बर्बर हमलावर बनकर आये थे
वे अतिथि बनकर आ रहे हैं
मसखरे ने ऐसा जादू चलाया है।
मसखरा अपने मामूली से महान बनने के
अगणित संस्मरण सुनाता है
वह चाँद को तिलस्मी रस्सी फेंककर
धरती पर खींच लाने के दावे करता है।
मसखरा शब्दों से खेलता है
और अलंकार-वैचित्र्य की झड़ी लगाता है।
शब्द हों या परिधान, या लूट और दमन के विधान
या सामूहिक नरसंहार रचने के लिए
विकसित किया गया संकेत विज्ञान
मसखरा सबकुछ सुगढ़-परिष्कृत ढंग से करता है
और क्रूरता का नया सौन्दर्यशास्त्र रचता है।
सर्कस का मालिक बन बैठा है मसखरा,
जनमत उसके साथ है
ऐसा बताने के गणितीय तर्क हैं उसके पास।
फिर भी व्यग्र-उद्विग्न है मसखरा।
दुर्ग-नगर सरीखे इस विशाल बन्द सर्कस पण्डाल के बाहर
अभी निचाट सन्नाटा है, चिलकती धूप है
और यहाँ-वहाँ उठते कुछ धूल के बगूले हैं।
मसखरा रहस्यमय सन्नाटे को नहीं समझता।
मसखरा बच्चे की उस हँसी तक को
बर्दाश्त नहीं कर पाता जिसमें विवशता नहीं होती,
भय नहीं होता।
तमाम आश्वस्तियों के बावजूद
अतीत के प्रेत सताते रहते हैं मसखरे को।
वह डरा रहता है।

— कविता कृष्णपल्लवी

दो कविताएँ

मैं दण्ड की माँग करता हूँ

– पाब्लो नेरूदा

(चीले देश के महाकवि)

अपने उन शहीदों के नाम पर
उन लोगों के लिए
मैं दण्ड की माँग करता हूँ
जिन्होंने हमारी पितृभूमि को
रक्तप्लावित कर दिया है
उन लोगों के लिए
मैं दण्ड की माँग करता हूँ
जिनके निर्देश पर
यह अन्याय, यह ख़ून हुआ
उसके लिए मैं दण्ड की माँग करता हूँ
विश्वासघाती
जो इन शवों पर खड़े होने की हिम्मत रखता है
उसके लिए मेरी माँग है
उसे दण्ड दो, उसे दण्ड दो
जिन लोगों ने हत्यारों को माफ़ कर दिया है
उनके लिए मैं दण्ड की माँग करता हूँ
मैं चारों ओर हाथ मलते
घूमता नहीं रह सकता
मैं उन्हें भूल नहीं सकता
मैं उनके ख़ून से सने हाथों को
छू नहीं सकता
मैं उनके लिए दण्ड चाहता हूँ
मैं नहीं चाहता कि उन्हें यहाँ-वहाँ
राजदूत बनाकर भेज दिया जाए
मैं यह भी नहीं चाहता
कि वे लोग यहीं छुपे रहें
मैं चाहता हूँ
उन पर मुक़दमा चले
यहीं, इस खुले आसमान के नीचे
ठीक यहीं
मैं उन्हें दण्डित होते देखना चाहता हूँ

●

मैं उन शहीदों से बात करना चाहता हूँ
लगता है वे लोग यहीं हैं
मेरे भाइयो! संघर्ष जारी रहेगा
अपनी लड़ाई हम जारी रखेंगे
कल-कारखानों में, खेत-खलिहानों में
गली-गली में यह लड़ाई जारी रहेगी
नमक/शोरा के खदानों में
यह लड़ाई जारी रहेगी
यह लड़ाई जारी रहेगी
वृक्षहीन समतल भूमि पर
ताँबें की भट्ठियों में धधक उठेगी
लाल-हरी लपटें
सुबह-सुबह कोयले का काला धुआँ
भरता जा रहा है जिन कोठरियों में
वहीं खींची जायेगी
युद्ध की रेखा
और हमारे हृदयों में
ये झण्डे जो तुम्हारे ख़ून के गवाह हैं
जब तक इनकी संख्या
कई गुना बढ़ नहीं जाती
सिर्फ़ लहराते ही नहीं रहें
और तेजी से फड़फड़ाने लगें
अक्षय वसन्त के इन्तज़ार में
लाखों-हज़ार पत्तों की तरह

●

हज़ारों साल तक
इस सड़क पर बिछे पत्थरों से
तुम्हारे कदमों की आवाज़
और आहटें आती रहेंगी
पत्थरों पर पड़े तुम्हारे ख़ून के दाग
अब किसी तरह मिटाये नहीं जा सकेंगे
हज़ारों कण्ठों की अजड्ड ध्वनि
इस सहमे हुए मौन को तोड़ देगी
तुम्हारी मौत को भूला नहीं जा सकेगा कभी भी
घण्टे की गूँजती हुई आवाज़
उसकी याद दिलाती रहेगी
बरसात में दीवारों की तरह नोनी पकड़ लेगी
नोनी लगी टूटी-पफूटी दीवारों के
काँप उठने के बावजूद
शहीदों तुम्हारे नामों की ज्वाला
कोई बुझा नहीं पायेगा
अत्याचारों के हज़ारों हाथ
जीवन्त आशाओं का गला नहीं दबा सकते
वह दिन आ रहा है
हम सारी दुनिया के लोग एकजुट हैं
हम अनेक लोग
आगे बढ़ते जा रहे हैं
सहने के ये आख़िरी दिन हैं
बहुत भारी लड़ाई लड़ के
फ़ैसले का वह एक दिन छीन लिया गया है
और तुम
ओ मेरे वंचित भाइयो!
ख़ामोशी से निकलकर तुम्हारी आवाज़ उठेगी
आजादी की असंख्य आवाज़ों से मिलने
मनुष्य की आशाएँ और आकांक्षाएँ
दिग्विजयी विद्युत्-छटाओं से मिलने
निकल पड़ी हैं

(‘सड़कों, चौराहों पर मौत और लाशें’ कविता का एक अंश)

एक दिवालिये की रिपोर्ट

– समी अल कासिम

(फ़िलिस्तीनी कवि)

अगर मुझे अपनी रोटी छोड़नी पड़े
अगर मुझे अपनी कमीज़ और अपना बिछौना बेचना पड़े
अगर मुझे पत्थर तोड़ने का काम करना पड़े
या कुली का
या मेहतर का
अगर मुझे तुम्हारा गोदाम साफ करना पड़े
या गोबर से खाना ढूँढ़ना पड़े
या भूखे रहना पड़े
और ख़ामोश
इनसानियत के दुश्मन
मैं समझौता नहीं करूँगा
आखिर तक मैं लड़ूँगा

जाओ मेरी जमीन का
आख़िरी टुकड़ा भी चुरा लो
जेल की कोठरी में
मेरी जवानी झोंक दो
मेरी विरासत लूट लो
मेरी किताबें जला दो
मेरी थाली में अपने कुत्तों को खिलाओ
जाओ मेरे गाँव की छतों पर
अपने आतंक के जाल फैला दो
इनसानियत के दुश्मन
मैं समझौता नहीं करूँगा
और आखिर तक मैं लड़ूँगा
अगर तुम मेरी आँखों में
सारी मोमबत्तियाँ पिघला दो
अगर तुम मेरे होंठों के
हर बोसे को जमा दो
अगर तुम मेरे माहौल को
गालियों से भर दो
या मेरे दुखों को दबा दो
मेरे साथ जालसाज़ी करो
मेरे बच्चों के चेहरे से हँसी उड़ा दो
और मेरी आँखों में अपमान की पीड़ा भर दो
इनसानियत के दुश्मन
मैं समझौता नहीं करूँगा
और आखिर तक मैं लड़ूँगा
मैं लड़ूँगा

इनसानियत के दुश्मन
बन्दरगाहों पर सिगनल उठा दिये गये हैं
वातावरण में संकेत ही संकेत हैं
मैं उन्हें हर जगह देख रहा हूँ
क्षितिज पर नौकाओं के पाल नज़र आ रहे हैं
वे आ रहे हैं
विरोध करते हुए
यूलिसिस की नौकाएँ लौट रही हैं
खोये हुए लोगों के समुद्र से
सूर्योदय हो रहा है
आदमी आगे बढ़ रहा है
और इसलिए
मैं कसम खाता हूँ
मैं समझौता नहीं करूँगा
और आखिर तक मैं लड़ूँगा
मैं लड़ूँगा

दोनों कविताओं का अनुवादः
रामकृष्ण पाण्डेय

डाक पंजीयन : SSP/lW/NP-319/2020-2022
प्रेषण डाकघर : आर.एम.एस, चारबाग़, लखनऊ
प्रेषण तिथि : दिनांक 5, प्रत्येक माह

देश में भयंकर गर्मी और पानी तथा बिजली के संकट का मुख्य कारण है

पूँजीवाद के हाथों हो रही पर्यावरण की तबाही

– सार्थक

पिछले दो महीनों से भारतीय उपमहाद्वीप विशेषतः उत्तरी भारत तथा पाकिस्तान के मैदानी इलाके भीषण गर्मी और लू की चपेट में हैं। कड़ी गर्मी और लू के कारण इस साल मई के मध्य तक भारत और पाकिस्तान में 90 से ज़्यादा लोगों की मौत चुकी है। यह महज़ सरकारी आँकड़ा है और यह तय है कि मौत के असली आँकड़ें इससे कहीं ज़्यादा होंगे। भयंकर गर्मी और लू के साथ-साथ पानी तथा बिजली के संकट ने जनता के रोज़मर्रा के जीवन को बेहाल बना दिया है। हर आपदा की तरह इस आपदा में भी मज़दूर वर्ग और मेहनतकश जनता ही सबसे ज़्यादा तकलीफ़ झेल रही है। मज़दूर वर्ग और मेहनतकश जनता के पास न ही 'वर्क फ्रॉम होम' (घर में बैठ कर काम करने) का विकल्प है, न ही कार्यस्थल वातानुकूलित है और न ही बिजली कट जाने पर घर पर गर्मी से बचने के लिए कोई इनवर्टर है। देश का मज़दूर और मेहनतकश दिन भर ईंट की भट्टी के समान तापमान से झुलसते हुए अपनी हड्डियाँ गलाता है, थक-हार कर घर लौटता है तो दो बूँद पानी के लिए तरसता है और बिना फैन या कूलर तपती जमीन और जलती छत के नीचे उचाट नींद सोता है। जिस आबादी की हाड़तोड़ मेहनत के बल पर यह देश चलता है उसे इस व्यवस्था में एक अदद नींद भी नसीब नहीं है रोटी, कपड़ा, आवास, दवाई के लिए तो वह पहले ही जूझता चला आ रहा है।

यह समझने की ज़रूरत है कि गर्मी, पानी तथा बिजली के संकट के कारण जो शारीरिक-मानसिक पीड़ा हम झेल रहे हैं यह कोई आकस्मिक प्राकृतिक घटना नहीं है बल्कि इस मानवद्रोही पूँजीवादी व्यवस्था की ही उपज है। इस मुनाफ़ा-केन्द्रित व्यवस्था में पूँजीपति वर्ग न केवल मानव श्रम का शोषण करता है बल्कि प्राकृतिक सम्पदाओं का भी अन्धाधुन्ध दोहन करता है और पर्यावरणीय विनाश को जन्म देता है। भयंकर गर्मी, लू, और पानी व बिजली के संकट पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा पर्यावरण के भयंकर विनाश के ही परिणाम हैं।

वैज्ञानिक शोध के अनुसार औद्योगिक क्रान्ति के बाद पृथ्वी के औसत तापमान में करीब 1.2 डिग्री सेल्सियस की बढ़ोतरी हुई है। तापमान में इस वृद्धि का लगभग आधा हिस्सा पिछले पाँच दशक में ही हुआ है। यह तेज़ी से भूमण्डलीय ऊष्मीकरण ('ग्लोबल वार्मिंग') की बढ़ती दर का प्रमाण है। मार्च 2022 का औसत तापमान 1980 से 2010 के बीच के औसत तापमान से 1.6 डिग्री सेल्सियस ज़्यादा रहा। 1880 में पृथ्वी के औसत तापमान का सटीक रिकॉर्ड रखने की प्रक्रिया शुरू होने के बाद से अब तक के सात सबसे गर्म वर्ष 2015 के बाद के ही रहे हैं। 2022 के मार्च और अप्रैल पिछले 122 सालों में सबसे गर्म मार्च और अप्रैल रहे हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार भूमण्डलीय ऊष्मीकरण के बढ़ने के साथ लू का असर भी बढ़ता जा रहा है। 1981 से 1990 के बीच 413 दिनों तक, 2001 से 2010 के बीच 575 दिनों तक और 2011 से 2020 के बीच 600 दिनों तक लू की स्थिती बनी रही। विश्व मौसम संगठन के अनुसार 1992 से 2000 के बीच भारत में लू के कारण 25,692 लोगों की मौत हो चुकी है। एक वैज्ञानिक आंकलन के अनुसार अगर साल 2100 तक औसत भूमण्डलीय तापमान 2 डिग्री बढ़ा तो लू की तीव्रता और नियमितता तीस गुना बढ़ जायेगी। भविष्य के इस भयंकर मंज़र की कल्पना भर से ही रूह काँप उठती है चारो तरफ़ तपती लू और धूल का बवण्डर वैसे ही जैसे कई विज्ञान की गल्पकथाओं पर आधारित सिनेमा में दिखाया जाता है।

भूमण्डलीय ऊष्मीकरण का मुख्य कारण है कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड जैसे 'ग्रीन हाउस गैस' का उत्सर्जन जो पृथ्वी की ऊष्मा को वायुमण्डल में ही कैद कर लेते हैं। इससे पृथ्वी का तापमान लगातार बढ़ता जाता है। सभी 'ग्रीनहाउस गैसों' में सबसे अधिक अनुपात में कार्बन डाइऑक्साइड है जो साधारणतः जीवाश्म ईंधन (कोयला, पेट्रोल, डीज़ल आदि) के उपभोग से पैदा होता है। परिवहन, बिजली उत्पादन और विभिन्न प्रकार के औद्योगिक उत्पादन के लिए इस पूँजीवादी व्यवस्था ने जीवाश्म ईंधन की अन्धाधुन्ध खपत की है। कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन पिछले 25 सालों में 40 प्रतिशत बढ़ा है। यह भी गौरतलब है कि भारत दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जक देश है। हमारे देश में सालाना करीब 250 करोड़ मैट्रिक टन कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन होता है।

वायुमण्डल में कार्बन डाइऑक्साइड की बढ़ती मात्रा का एक और अहम कारक है दुनिया भर में तेज़ी से हो रहा जंगलों का सफाया ('डिफोरेस्टेशन')। अगर भारत की ही बात की जाए तो हमारे देश के वन क्षेत्रफल में पिछले दस सालों में 3.62 प्रतिशत तथा पिछले बीस सालों में 5.3 प्रतिशत कम हुए हैं। वन क्षेत्रफल में पिछले बीस सालों में यह भारी कमी 100 करोड़ टन कार्बन डाइऑक्साइड के उत्सर्जन के समान है। दो साल के पहले ब्राज़ील के जलते हुए अमेज़न जंगल की तस्वीरें आज भी ज़हन में ताज़ा है। पिछले चालीस सालों में अमेज़न वर्षा वन के दस लाख वर्ग किमी क्षेत्र को साफ़ किया जा चुका है। ब्राज़ील में मज़दूर-विरोधी दक्षिणपंथी बोल्सोनारो के सत्ता में आने के बाद से अमेज़न वर्षा वन काटने की गति ने फिर से तेज़ी पकड़ ली। वैश्विक तापमान को नियंत्रित करने में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले इस वर्षा वन को साफ़ कर ब्राज़ील के धुर दक्षिणपंथी शासक वहाँ बड़े कॉर्पोरेटों के द्वारा खुदाई, पशु पालन, कृषि और औद्योगिक प्रकल्पों के लिए रास्ता साफ़ कर रहा है। भूमण्डलीय ऊष्मीकरण भूमण्डलीय वायु और महासागरीय जलधाराओं ('ओशन करेण्ट') के सामान्य प्रवाह को बदलती है जिसके कारण लू, सूखा, बाढ़, तूफ़ान आदि ज़्यादा नियमित और तीव्र होने लगे हैं। साधारणतः उत्तर भारत में मार्च और अप्रैल के महीनों में पश्चिमी विक्षोभ ('वेस्टर्न डिस्टर्बेंस') के कारण बारिश हो जाती है। लेकिन इस साल भूमण्डलीय ऊष्मीकरण के कारण पश्चिमी विक्षोभ काफ़ी कमज़ोर रहा जिसके वजह से उत्तर भारत में इन दो महीनों में मुश्किल ही बारिश हुई है। बारिश के अभाव ने लू की परिस्थिति को ज़्यादा भयंकर बना दिया।

इसके अलावा, भारत में पूँजीवादी विकास के साथ शहरों का तेज़ी से विस्तार हुआ है। लेकिन ज़्यादातर शहरों के मामले में यह प्रक्रिया बेहद अनियोजित तरीके से हुई है। इसका नतीजा यह हुआ कि हमारे शहरों का ढाँचा कुछ इस प्रकार बना जिससे ज़्यादातर ऊष्मा शहरों के अन्दर ही रह जाए। वैज्ञानिक इन ख़ास शहरी इलाकों को 'ताप द्वीप' ('हीट आइलैंड') की संज्ञा देते हैं। इन ताप द्वीपों का औसत तापमान अपने आसपास के इलाकों के मुकाबले कहीं ज़्यादा होता है। अनियोजित शहरी विकास और ताप द्वीपों के बनाने की प्रक्रिया पूँजीवाद की अराजक प्रकृति की ही एक अभिव्यक्ति है।

भीषण गर्मी के अलावा भूमण्डलीय ऊष्मीकरण पहले से मौजूद भयंकर खाद्य संकट को और भी विकराल रूप प्रदान करता है। हाल ही में भारत सरकार के द्वारा गेंहू के निर्यात पर लगाये गए प्रतिबन्ध का एक तात्कालिक कारण यही था। इस साल भीषण गर्मी और लू के कारण गेंहू के फसल में भी भारी गिरावट दर्ज़ हुई है। लेकिन यहाँ हमें यह याद रखने की ज़रूरत है कि खाद्य संकट का मुख्य कारण भूमण्डलीय ऊष्मीकरण या मौसम में अप्रत्याशित बदलाव नहीं बल्कि मुनाफ़े के हवस पर टिकी इस पूँजीवादी व्यवस्था का अराजकतावादी-अनियोजित चरित्र जो मुनाफ़े के लिए लाखो-लाख टन अनाज़ समुद्र में बहा देता है, उसकी जमाखोरी करता है और उसे सड़ा देता है। पूँजीवादी व्यवस्था की नीतियाँ जनता की ज़रूरतों को केन्द्र में रखकर नहीं बल्कि पूँजीपतियों के मुनाफ़े को केन्द्र में रखकर बनायी जाती है। इसलिए जब फ़सल सामान्य से बेहतर भी होते हैं तब भी अनाज गोदामों में सड़ते हैं और जनता भूखी मरती है।

भूमण्डलीय ऊष्मीकरण जल चक्र पैटर्न को भी बड़े पैमाने पर प्रभावित करता है जिसके कारण अन्ततः साफ़ पानी की उपलब्धता का विकट संकट पैदा होता है। इसके अलावा कृषि और उद्योगों से प्रदूषित पानी सीधे मुख्य जल स्रोतों में निष्कासित किया जाता है जिसके कारण जल प्रदूषण भी पिछले कुछ दशकों से अभूतपूर्व तेज़ी से बढ़ रहा है। पूरी दुनिया में आज भी 220 करोड़ लोग साफ़ पानी से वंचित हैं। हर दिन 700 बच्चे साफ़ पीने के पानी नहीं होने की स्थिति में बीमारियों से मरते हैं। **नीति आयोग के रिपोर्ट के अनुसार भारत में 60 करोड़ से ज़्यादा लोग गम्भीर जल संकट से जूझ रहे हैं तथा हर साल साफ़ पानी के अभाव से दो लाख लोगों की मौत होती है। मरने वाले ये लोग मज़दूर मेहनतकश वर्ग से ही आते हैं। क्योंकि पैसे वाले तो पानी साफ करने और हवा साफ करने की मशीनें लगा कर सुकूनतलब जिन्दगी जीते हैं।** जल गुणवत्ता सूचकांक के अनुसार 122 देशों की सूची में भारत 120 स्थान पर है। देश का 70 प्रतिशत से ज़्यादा पानी दूषित है। नीति आयोग के अनुसार 2030 तक देश में साफ़ पानी की माँग इसके आपूर्ति के मुकाबले दो गुना हो जायेगा जिससे देश में जल संकट और भी ज़्यादा विकट हो जाएगा। यमुना के सूखने के कारण दिल्ली में अब पानी का संकट तीव्र हो गया है। दिल्ली में मई के महीने में औसतन 20 करोड़ लीटर पानी की कमी रही जिसके कारण तीन लाख परिवार प्रभावित हुए।

भूमण्डलीय ऊष्मीकरण के कारण एक ओर जहाँ देश पानी के संकट से जूझ रहा है वहीं दूसरी ओर देश में बाढ़ की समस्या भी ज़्यादा नियमित और ज़्यादा विनाशकारी होती जा रही है। तेज़ गति से वनों को काटते जाने की वजह से एक ओर सूखा पड़ रहा है वहीं दूसरी ओर बाढ़ आने की परिघटना भी बढ़ रही है। वनों के काटे जाने के कारण पानी की सतह के नीचे तक रिसाव कम हो जाते हैं। इससे भूमिगत जल स्तर में भारी गिरावट आती है और नदी, नाले, कुएँ आदि ज़ल्दी सूखने लगते हैं। दूसरी ओर पेड़ों के कटने के कारण सतही जल प्रवाह की गति बढ़ जाती है जिससे बाढ़ के आसार भी बढ़ जाते है। 2018 और 2019 में केरल में आए बाढ़ इसी प्रक्रिया की एक मिशाल है। पिछले तीन दशकों से पश्चिम घाट के घने जंगलों को साफ़ करके वहाँ खुदाई और औद्योगिक प्रोजेक्ट का तेज़ी से विस्तार किया जा रहा था। यही चीज़ हम असम में भी देख सकते हैं। असम देश के उन राज्यों में से है जहाँ पिछले कुछ दशकों में सबसे ज़्यादा वनोन्मूलन हुआ है। नतीज़तन पिछले एक दशक से असम की जनता को लगभग हर साल विनाशकारी बाढ़ झेलना पड़ रहा है।

भीषण गर्मी और पानी के संकट के साथ बिजली के संकट ने भी देश के मेहनतकश जनता की ज़िन्दगी को दूभर बनाने में कोई कमी-कसर नहीं छोड़ी है। दो-ढाई महीनों से देश भर के विभिन्न राज्यों में दो से दस घण्टे बिजली कटौती एक आम बात हो गई है। अप्रैल में बिजली की आपूर्ति में 1.6 प्रतिशत गिरावट आई जो पिछले छह सालों में सबसे बड़ी कमी है। सरकार के अनुसार बिजली संकट के मुख्य कारण हैं इस साल की भीषण गर्मी और लगातार लू की स्थिती का बना रहना। इसे कोयले की कमी और कायले की आपूर्ति में प्रबंधन और व्यवस्था सम्बन्धी कठिनाइयों ने बढ़ा दिया है। लेकिन यहाँ हमें यह समझने की ज़रूरत है कि बिजली का यह संकट कोई आकस्मिक परिघटना नहीं और न ही इसके मूल

(पेज 4 पर जारी)

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी कात्यायनी सिन्हा द्वारा 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006 से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा मल्टीमीडियम, 310, संजय गांधी पुरम, फ़ैज़ाबाद रोड, लखनऊ से मुद्रित। सम्पादक : अभिनव ● सम्पादकीय पता : 69 ए-1, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, ातगंज, लखनऊ-226006